विवेक ज्योति

वर्ष ५४ अंक १२ दिसम्बर २०१६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

दिसम्बर २०१६

प्रबन्ध सम्पादक **स्वामी सत्यरूपानन्द**

सम्पादक **स्वामी प्रपत्त्यानन्द**

सह-सम्पादक **स्वामी मेधजानन्द**

व्यवस्थापक **स्वामी स्थिरानन्द**

वर्ष ५४ अंक १२

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

८	स्वामी प्रेमानन्द
२०	श्रीमाँ सारदा देवी
२४	स्वामी शिवानन्द
२४	क्रिस्मिस ईव

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री डी. टी. भगत, रायपुर	१०००/-
श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, रायपुर	१०००/-
स्वामी सच्चिदानन्द, गोरखपुर	५०००/-
श्रीमती रुक्मणी वर्मा, रायपुर	१०००/-
श्री बीरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)	१०००/-
प्रो. के. बी. सहाय, दिल्ली	५०००/-
प्रो. ब्रह्मदेव सिंह, उत्तरप्रदेश	१०,०००/-
श्री अरुण गोयल, नई दिल्ली	१०००/-
श्रीमती सविता बॅनर्जी, जशपुर	१०००/-

आवश्यक सूचना, देखें पृ. ५८२

क्रमांक	सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६२.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	शा. दु.ब.श्री वै.पी.जी. संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
६३.	श्री आर.पी. सराफ, भिलाई (छ.ग,)	इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल टेक्नोलॉजी, माटूंगा, मुम्बई (महा.)
६४.	श्रीमती गीतिका सराफ, भिलाई (छ.ग.)	विश्वेश्वरैया नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, नागपुर (महा.)
६५.	डॉ. विप्लव दत्ता, रायपुर (छ.ग.)	विवेकानन्द हायर सेकण्डरी स्कूल, माना केम्प, रायपुर (छ.ग.)
६६.	श्री संतोष कुमार देवान, धमतरी (छ.ग.)	शा. मा. शाला, ग्रा-पो. पुरी - वाया कुरुद, धमतरी (छ.ग.)
६७.	श्रीमती बिनु सिन्हा, अरुणाचल प्रदेश	वनिता पब्लिक स्कूल, लाहूराबीर, जि.वाराणसी (उ.प्र.)
६८.	श्री मोहित भटनागर, बीकानेर (राजस्थान)	गवर्मेंट डिवीजनल लाईब्रेरी, सागर रोड, बीकानेर (राज.)
६९.	डॉ. निहार रंजन सिन्हा, पटना (बिहार)	रामअवतार गौतम संस्कृत महाविद्यालय, दरभंगा (बिहार)
७०.	श्री भूपेन्द्र कुमार सिंह, सरण (बिहार)	ज्योति प्रकाश मेमोरियल लाइब्रेरी, बक्सर (बिहार)
७१.	......	शास. कचना धुव्रा महाविद्यालय छुरा, गरियाबंद (छ.ग.)
७२.	श्री बीरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)	शास. पी.जी. दु.ब. महिला महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
७३.	डॉ. विनया पेन्डसे, उदयपुर (राज.)	प्रधानाचार्य, विद्याभवन. जी. दास कॉलेज, उदयपुर (राज.)
७४.	डॉ. विनया पेन्डसे, उदयपुर (राज.)	केन्द्रीय पुस्तकालय ज.ना.रा. विद्यापीठ वि.वि. उदयपुर
७५.	श्री वी.एस. बिस्ट, पालम विहार, गुरगाँव	केन्द्रीय विद्यालय, ग्रा.- सुनाउला, अलमोड़ा (उत्तराखण्ड)
७६.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, अम्बिकापुर (छ.ग.)
७७.	श्री कुलदीप राय, चम्पावत (उत्तराखण्ड)	श्री कल्याणिका हिमालय देवस्थानम् डोल, अलमोड़ा
७८.	श्री एस.एन. गोयल, नई दिल्ली	शा. कन्या पी.जी. महाविद्यालय, बेमेतरा (छ.ग.)
७९.	श्रीमती मेधा काले, नागपुर (महा.)	स्टाफ लायब्रेरी, स्टेट बैंक इंडिया, सिविल लाइंस, नागपुर
८०.	कु. चित्रा तायडे, नागपुर (महा.)	शा. कमलादेवी कन्या महाविद्यालय, राजनांदगाँव (छ.ग.)
८१.	श्री पंचराम साहू, सड्डू, रायपुर (छ.ग.)	शा. जे. योगानंद छ.ग. महाविद्यालय बैरन बाजार, रायपुर
८२.	श्री नवीन सिंह, बिलासपुर (छ.ग.)	शा. राजमहंत नयनदास महिला महाविद्यालय, बलौदाबाजार
८३.	श्रीमती सविता बॅर्नजी, जशपुर (छ.ग.)	शा. इंजी. विश्वेश्वरैया पी.जी. महाविद्यालय, कोरबा (छ.ग.)

वर्ष ५४ दिसम्बर २०१६ अंक १२

श्रीसारदामातृस्तुतिः

श्रीरामकृष्णमय-जीवन-सर्वसारा
साराधनाखिलजनेषु दया प्रसारा।
लोकप्रसूर्विजितजैत्रमनो विकारा
श्रीसारदा विजयते जगदात्मरूपा।।

– श्रीरामकृष्ण जिनके जीवन-सर्वस्व हैं, जो सब ईश्वर-आराधकों के प्रति दयामयी हैं, जो समस्त प्राणियों की माँ हैं, जिन्होंने सभी दुर्जय मनोविकारों को जीत लिया है और जो सकल जगत की आत्मस्वरूपा हैं, उन विश्वजननी श्रीसारदा देवी की जय हो।

रमां केशवस्याप्युमां शूलपाणेः
परा मुक्तिदां भक्तिमार्गप्रचाराम्।
सदाचारमूर्तिं शिवां विश्ववन्द्यां
नमामीश्वरीं सारदां शारदां ताम्।।

– जो विष्णु की लक्ष्मी, शिव की उमा, परमा मुक्तिदात्री और भक्तिमार्गप्रसारिणी हैं, सदाचार की मूर्ति सर्वमंगलमयी तथा विश्व-वन्दनीया परमेश्वरी हैं, उन्हीं दुर्गास्वरूपिणी श्रीसारदा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

(सपार्षद श्रीरामकृष्णरत्नस्तोत्रमाला, पृ.-१२९)

पुरखों की थाती

व्योमैकान्त-विहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं
बध्यन्ते निपुणैरगाध-सलिलान्मत्स्या समुद्रादपि ।
दुर्णीतं किमिहास्ति किं सुचरितं कः स्थानलाभे गुणः
कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ।।५२९

– आकाश के एकान्त में विचरनेवाले पक्षी भी विपत्ति में फँस जाते हैं । अथाह जल में रहनेवाली मछलियाँ भी मछुआरों द्वारा पकड़ ली जाती हैं । (तो फिर कैसे कहा जाय कि) संसार में क्या दुष्कर्म है और क्या सत्कर्म? या फिर कौन-सा स्थान पाना लाभदायक है? क्योंकि काल तो विपत्ति रूपी हाथ बढ़ाकर जब जिसे चाहता है, उसे दूर से ही पकड़ लिया करता है ।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पंचेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।।५३०।।

– वन में भी विषयी लोगों के मन में बुरे विचार आते रहते हैं और घर में रहकर भी (नेत्र, कर्ण, त्वचा आदि) पाँचों इन्द्रियों को वश में लाने की तपस्या हो सकती है । जो व्यक्ति सर्वदा भले कार्यों में लगा रहता है और जिसके हृदय से आसक्तियाँ दूर हो गयी हैं, उसके लिए घर ही तपोवन के समान है ।

विविध भजन

माँ सारदा की लीला का हम गान करें

स्वामी रामतत्त्वानन्द

आओ भक्तों माँ सारदा की, लीला का हम गान करें।
ममता की छाया में बैठ, ममता का हम पान करें।।
माँ की जय बोलो ...
बैकुंठ छोड़ के आयी लक्ष्मी, जयरामवाटी गाँव में।
रामचन्द्र के घर आंगन और श्यामा माँ की छाँव में।।
जयरामवाटी चलो चलें हम माताजी का मान करें।।
आओ भक्तों माँ सारदा की...
भूखे को खिचड़ी खिलाती, गइयन को चारा-पानी।
चन्द्रा माँ की बहु पियारी, रामकृष्ण की पटरानी।।
रामकृष्ण और सारदा माँ के, गुणों का हम गान करें।।
आओ भक्तों माँ सारदा की...
तेरी शरण में जो भी आया सबको गले लगायी तुम।
दीन-दुखी और पापी-तापी, सबका दुख मिटायी तुम।।
माँ की ममता की आँचल में हम अपना कल्याण करें।।
आओ भक्तों माँ सारदा की ...
काली रूप दिखा डाकू को, अपना उन्हें बनायी तुम।
अमजद जैसे दीन-दुखी को अपने गले लगाई तुम।।
बह रही है ममता वायु, आओ हम भी पान करें।।
आओ भक्तों माँ सारदा की...

प्रभु-चरणों को भज रे

तारादत्त जोशी

राम राखो राम राखो राम रखो शरना।
हाथ जोड़ विनती प्रभु पड़ा तोरे चरना।।
हाथ जोड़ आया प्यारे हाथ जोड़ जाना रे।
धरती में खोना प्यारे, धरती में पाना रे।।
जीवन का खोया-पाया सभी छोड़ जाना रे।
भाई-बन्धु, तात-मात केवल बहाना रे।।
तात मात बन्धु भ्रात सब प्रभु एक रे।
एक से नाता जोड़ नाता बड़ा नेक रे।।
जग नाते छोड़ प्रभु चरणों को भज रे।।
एक ही सहारा भाई प्रभु पद रज रे।।

श्रीजानकी पद कंज भज मन

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

श्रीजानकी पदकंज भज मन हरन शरणागत भयम्।
जो दीन मानस मधुप हित मकरन्द युत जलजद्वयम्।।
हनुमन्त सेवित लखन लालित भरत अपभय मोचनम्।
मिथिला महि पावन करन संताप सोच विमोचनम्।।
भगवन्त रति रस वारि धन त्रय ताप तापित तारकम्।
रघुनन्द उर आनन्द वर्धन प्रणत जन उद्धारकम्।।
भव सिन्धु बोहित पतित पावन प्रकट करुणा विग्रहम्।
आश्रित मनोरथ कल्प तरु राजेश जीवन जीवनम्।।

जागो माँ

सारदा शुभदायिनी युगदेव वन्दिनी
कल्याणी नारायणी जागो माँ।
नरयुग जननी नारी देह धारिणी
अशरण तारिणी जागो माँ।।
महाकाली शर्वाणी ज्ञानदायिनी वाणी
वैदेही राधारानी जागो माँ।
श्यामादेवी नन्दिनी युगदेव संगिनी
त्रिजगत जननी जागो माँ।।
जागो धरम स्थापने जीवन महारणे
जनमे जनमे तुमी जागो माँ।
ब्रह्म सनातनि नमो नारायणी
चिर कल्याणी जागो माँ।।

श्रीकृष्णनाम-संकीर्तनम्

श्रीकृष्णाय नमो, श्रीश्यामाय नमो।।
केशवाय नमो नमो, माधवाय नमो नमो।।
गोपीवल्लभ नमो नमो, रुक्मिणिवल्लभ नमो नमो।।
गोविन्दाय नमो नमो, गोपालाय नमो नमो।।
गीतावाचक नमो नमो, मूरलीवादक नमो नमो।।
गोवर्धन-धर नमो नमो, वेणु-अधरधर नमो नमो।।

माँ सारदा का सत्यस्वरूप

शक्ति-अवतार का प्रयोजन – शक्त्यवतार के सम्बन्ध में दुर्गासप्तशती में माँ स्वयं कहती हैं –

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।

तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।

"जब-जब दानवी विघ्न-बाधाएँ समुपस्थित होंगी, तब तब मैं आविर्भूत होकर शत्रुओं का विनाश करूँगी।" यह स्वयं माँ दुर्गा की अमोघ वाणी और दृढ़ सत्संकल्प है।

जब मानव जीवन के परम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति में कुवृत्ति रूपी दानवी विघ्न उत्पन्न करने लगी, जब ईश्वरपरायणा बुद्धि को नास्तिकों की कुतर्कबुद्धि रूपी दानवी वृतियाँ प्राणियों के परम प्रेमास्पद परमेश्वर से मिलने में भ्रम और बाधाएँ खड़ी करने लगीं, जब अनैतिकता, अश्रद्धा, जड़बुद्धिता, भोगपरायणता, अधर्मिता, ईर्ष्या-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोहादि आसुरी वृत्तियाँ मानव के दैवी गुण - सद्बुद्धि-विवेक, दिव्य जीवन के विकास तथा अन्त:स्थ आत्मशक्ति, दिव्य ईश्वर की अभिव्यक्ति में बाधा देने लगीं, तब पूर्व शक्त्यवतारों सीता, राधा, यशोधरा, विष्णुप्रिया की भाँति माँ सारदा ने अवतार लेकर अपने दिव्य जीवन से उपरोक्त आसुरी वृत्तियों का नाश कर ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया, मनुष्यों के आत्मविकास नैतिक जीवन, धर्माचरण, ईश्वरीय शक्ति के स्फुरण, उसकी अभिव्यक्ति आदि का दिव्य द्वार समस्त प्राणियों के लिये उन्मुक्त कर दिया। मानव के आाध्यात्मिक यात्रापथ को निष्कंटक कर उन्हें ईश्वरोन्मुखी बनाया। उन्हें पूर्णता की, मुक्ति की दिशा में अग्रसर किया।

माँ सारदा का सत्यस्वरूप क्या है? – माँ सारदा का वास्तविक स्वरूप क्या है? वे कौन हैं? इस मृत्यु की तांडव-भूमि, ईश्वर-लीलाधाम पर वे क्यों अवतरित हुई, इस सम्बन्ध में हम संक्षिप्त विश्लेषण करेंगे।

'माँ' को बहुत से लोग विभिन्न प्रकार से जानते हैं। वे किसी की पुत्री थीं, किसी की बुआ थीं, किसी की बहन थीं। कोई उन्हें गुरुपत्नी मानते थे, तो कोई उनमें अपनी जननी की झलक देखते थे। गाँव की तो वे 'सारू' ही थीं। लेकिन वास्तव में माँ इन सबसे ऊर्ध्व, सम्पूर्ण जागतिक सम्बन्धों से ऊपर, लोकातीत थीं। उनके इस दिव्य स्वरूप को, बिना उनकी कृपा के कौन समझ सकता है? उन्होंने कृपा कर जिनके समक्ष अपना स्वरूप अभिव्यक्त किया तथा जिन्हें समझने के लिए दिव्य दृष्टि तथा हृदय में अनुभूति करने की दिव्य शक्ति प्रदान की थी, वे लोग ही उन्हें समझ सके।

श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग संन्यासी शिष्य एवं स्वामी विवेकानन्द के गुरुभ्राता स्वामी सारदानन्द जी द्वारा देववाणी संस्कृत भाषा में प्रणीत श्लोक में श्रीमाँ सारदा के स्वरूप की स्पष्ट झलक मिलती है –

यथाग्नेर्दाहिकाशक्ती रामकृष्णे स्थिता हि या।

सर्वविद्यास्वरूपां तां सारदां प्रणमाम्यहम्।।[१]

– "अग्नि में दहनशक्तिवत् जो श्रीरामकृष्ण में अभिन्न रूप से विराजमान हैं, उन सर्वविद्यारूपिणी माँ सारदा को मैं प्रणाम करता हूँ।" जिस प्रकार प्रकाशविहीन सूर्य, स्निग्ध ज्योत्स्ना-विहीन चन्द्रमा, दहनशक्ति-विहीन अग्नि, जलहीन बर्फ, अकल्पनीय हैं, असंभाव्य हैं, वैसे ही शक्तिविहीन अवतार असंभव-सा है। जब निर्गुण-निराकार ईश्वर सगुण-साकार रूप नर-शरीर धारण कर धराधाम में आविर्भूत होते हैं, तब उनके साथ उनकी योगमाया अनादि चिरसंगिनी सर्वदा उनसे अभिन्नस्थ शक्ति भी इस मही पर अवतार लेती हैं। वे उनके द्वारा किए जानेवाले लोक-कल्याण में सतत चिरसंगिनी बनकर सहायता करती हैं। जो शक्ति राम के साथ सीता, कृष्ण के साथ राधा, चैतन्यदेव के साथ विष्णुप्रिया, बुद्ध के साथ यशोधरा के रूप में इस पृथ्वी पर प्रकट हुई थी, वही शक्ति युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव के साथ 'माँ सारदा' के रूप में उद्भूत हुई तथा उनके लोक-कल्याण में उनकी अभिन्न सहायिका बनकर अवतार के उद्देश्य की पूर्ति की, अवतार को परिपूर्णता प्रदान की। जैसे शक्ति के बिना शिव शव प्रतीत होते हैं, वैसे ही शक्ति के बिना अवतार निष्क्रिय हैं, अपूर्ण हैं। माँ सारदा ने श्रीरामकृष्ण की साधनाओं में उनकी सहायता की, उनके पास आनेवाले भक्तों की सब प्रकार से सेवा कर उन्हें माँ का स्नेह देकर उनके जीवन को प्रेम, आनन्द से पूर्ण किया। श्रीरामकृष्ण के पार्थिव शरीर-त्याग के पश्चात् श्रीमाँ ने श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रदत्त आध्यात्मिक उत्तरदायित्व – रामकृष्ण संघ के संन्यासी एवं गृही भक्तों में आध्यात्मिक शक्ति ज्ञान-भक्ति-त्याग-

करुणा एवं प्रेम-संचार का भार अपने कंधों पर लेकर सर्वदा श्रीरामकृष्णगतप्राण होकर जन-मानस में दैवी शक्ति-संचार किया। उनमें ज्ञान-भक्ति-वैराग्य-त्याग, तपस्या, प्रेम-करुणा, क्षमा-शान्ति एवं आनन्द का उद्रेक कर सम्पूर्ण विश्व को नवालोक प्रदान किया।

श्रीमाँ सारदा के सम्बन्ध में युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने गोलाप-माँ से कहा था – ''वह सारदा है – सरस्वती है। ज्ञान देने के लिए आई है। सौन्दर्य रहने पर उसे अशुद्ध भाव से देखने के कारण कहीं लोगों का अमंगल न हो जाय, इसी से इस बार रूप छिपाकर आई है। वह ज्ञानदायिनी महाबुद्धिमती है। वह क्या ऐसी-वैसी है? वह मेरी शक्ति है।''[२]

श्रीरामकृष्ण देव ने श्रीमाँ सारदा के दैवी शक्ति की महिमा बताते हुए स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी महाराज से कहा था – ''राधा की माया अनन्त है। उसे कहा नहीं जा सकता। राम और कृष्ण करोड़ों की संख्या में उसी से उत्पन्न होते हैं, उसी में रहते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं।[३]

उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि श्रीमाँ केवल दैवीगुण-सम्पन्न नारी नहीं हैं। जो लक्ष्मी विष्णु के संग बैंकुठ में वास करती हैं, जो राधा श्रीकृष्ण के साथ वृन्दावन में विहार करती हैं, जो सीता श्रीराम के साथ अयोध्या में थीं, जो शक्ति देश-कालानुसार दुर्गा-काली, लक्ष्मी, सरस्वती, शीतला, मनसा, तारा, सिंहवाहिनी आदि रूपों में लोक कल्याणार्थ प्रकट होती रहीं, वही हमारी परमाराध्या जगज्जननी माँ सारदा हैं।

कालीरूपिणी माँ सारदा – एक बार श्रीमाँ सारदा श्रीरामकृष्ण देव से मिलने के लिए अपने पिताजी के साथ जयरामबाटी से दक्षिणेश्वर जा रही थीं। वे रास्ते में प्रबल ज्वर-ग्रस्त हो गईं। बाध्य होकर उन दोनों पिता-पुत्री को एक चट्टी में निवास करना पड़ा। ज्वरावेग से शारीरिक वेदना और पति-मिलन की अनिश्चितता या विलम्ब के कारण मानसिक पीड़ा भी थी, जिससे वे बेहोश हो गयीं। उस समय उन्होंने देखा – एक श्यामवर्ण की सुन्दरी उनके पास बैठकर उनका शरीर और सिर सहलाने लगी। उसके कोमल स्निग्ध करों से श्रीमाँ के शरीर का ताप शीघ्र मिट गया। माँ ने पूछा – ''अरी, तुम कहाँ से आयी हो?'' नवागता रमणी ने उत्तर दिया – ''दक्षिणेश्वर से।'' ... ''अरी, तुम हमारी कौन हो?'' रमणी ने उत्तर दिया – ''मैं तुम्हारी बहन हूँ।'' श्रीमाँ ने कहा – ''हाँ, तभी तो तुम आई हो।''[४] उपरोक्त दृष्टान्त जो स्वयं श्रीमाँ के द्वारा ही दृश्य एवं कथित है, इससे उनके काली स्वरूप का बोध होता है।

जो आद्याशक्ति देवी काली दक्षिणेश्वर में निवास करती थीं, वहीं माँ सारदा भी हैं। इस सम्बन्ध में दूसरी घटना द्रष्टव्य है – एक बार श्रीमाँ के भतीजे शिबू दा, माँ के साथ कामारपुकुर से जयरामबाटी जा रहे थे। सम्भवत: उन्होंने माँ को काली के रूप में देखा होगा, जैसा कि मथुर बाबू ने ठाकुर को सामने से शिव और पृष्ठभाग से काली देखा था। माँ ने पीछे मुड़कर देखा कि शिबू खड़ा है, आ नहीं रहा है। माँ ने शिबू-दा को आने के लिए कहा। शिबू-दा ने सशर्त कहा, एक बात बताओ, तब आऊँगा। उन्होंने पूछा, 'तुम कौन हो? माँ बहुत छिपाने की चेष्टा कीं, लेकिन शिबू-दा के प्रबल हठ पर उन्होंने स्वीकार करते हुए कहा – ''लोग मुझे 'काली' कहते हैं।''[५] तब शिबू-दा पूर्ण सन्तुष्ट हो जयरामबाटी आये। जयरामबाटी में ही किसी अन्य दिन शिबू-दा ने माँ के चरणों में सिर रखकर 'माँ' को अपना पूरा भार सौंपा था। हाथ जोड़कर 'सर्वमंगलमांगल्ये' से प्रार्थना की थी। माँ का अभय वरदान प्राप्त किया था। शिबू-दा ने वरदा मामा से कहा – ''भाई, माँ साक्षात् काली हैं। वे ही कपालमोचनी हैं, उनकी ही कृपा से मुक्ति मिलती है। समझे?''[६]

श्रीमाँ के काली रूप के सम्बन्ध में मात्र श्रीरामकृष्ण का एक दृष्टान्त देकर हम इस सन्दर्भ को विराम देंगे।

एक दिन श्रीमाँ सारदा श्रीरामकृष्ण देव के पैरों को सहला रही थीं। उन्होंने ठाकुर से पूछा –''तुम मुझे किस रूप में देखते हो?'' श्रीरामकृष्ण देव ने उत्तर दिया – ''जो माँ (काली) मन्दिर में है ... वही इस समय मेरा पैर सहला रही है। सचमुच, तुम्हें मैं सदा साक्षात् आनन्दमयी के रूप में ही देखता हूँ।''[७] इस प्रकार श्रीमाँ ने कभी काली के रूप में, कभी हरीश को मारने के लिये दुर्गा के रूप में, कभी सीता के रूप में और अन्य शक्ति रूपों में अपने को अभिव्यक्त किया। यही उनका वास्तविक स्वरूप है, इस स्वरूप का बोधकर भक्त अचल भक्ति-मुक्ति प्राप्त करता है। माँ अपनी चराचर सन्तानों पर सदा कृपावृष्टि करें, यही उनके चरणारविन्दों में प्रार्थना है। ○○○

सन्दर्भ - **१.** सपार्षद श्रीरामकृष्णस्तोत्रम्, **२.** श्री सारदा देवी – स्वामी गम्भीरानन्द, पृष्ठ - १४४-१४५, **३.** वही, पृष्ठ - १५३, **४.** वही, पृष्ठ - ५३-५४, **५.** वही, पृष्ठ - ५२०, **६.** वही, पृ. ५२२, **७.** वहीं पृष्ठ - ५८

मन और उसकी एकाग्रता

स्वामी विवेकानन्द

सर्वश्रेष्ठ महापुरुष शान्त, निर्वाक् और अज्ञात होते हैं। उन्हें ही विचार की शक्ति का सच्चा ज्ञान रहता है। उनमें यह दृढ़ विश्वास होता है कि यदि वे किसी पर्वत की गुफा में जाकर उसके द्वार बन्द करके केवल पाँच सच्चे विचारों का ही मनन कर इस संसार से विदा हो जायँ, तो उनके ये पाँच विचार ही अनन्त काल तक जीवित रहेंगे। वास्तव में ऐसे विचार पर्वतों को भी भेदकर, समुद्रों को लाँघकर सारे संसार में व्याप्त हो जाएँगे। वे मानव-हृदय व मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर ऐसे नर-नारी उत्पन्न करेंगे, जो उन्हें मनुष्य के जीवन में कार्यान्वित करेंगे।

एक विचार लो; उसी को अपना जीवन बनाओ, उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो और उसी में जीवन बिताओ। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु – सर्वांग उसी विचार से पूर्ण रहें। दूसरे सारे विचार छोड़ दो। सफल होने का यही उपाय है और इसी उपाय से बड़े-बड़े धर्मवीर पैदा हुए हैं।

विचार ही हमारी कार्य-प्रवृत्ति का नियामक है। **मन को सर्वोच्च विचारों से भर लो**, दिन-पर-दिन यही सब भाव सुनते रहो, मास-पर-मास इसी का चिन्तन करो। शुरू में सफलता न भी मिले, पर कोई हानि नहीं; **असफलता तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह मानव-जीवन का सौन्दर्य है।**

मन के संयत हो जाने पर तुम पूरे शरीर को वश में रख सकोगे। तब तुम इस यंत्र के दास नहीं रहोगे; बल्कि यह देह-यंत्र ही तुम्हारा दास होकर रहेगा। तब यह देह-यंत्र आत्मा को खींचकर नीचे की ओर न ले जाकर, उसकी मुक्ति में श्रेष्ठ सहायक हो जायेगा।

मन मानो सरोवर के समान है और हमारा प्रत्येक विचार मानो उस सरोवर की लहर के समान है। जैसे सरोवर में लहर उठती, गिरती और गिरकर अन्तर्हित हो जाती है, वैसे ही मन में लगातार ये विचार-तरंगें उठतीं और अन्तर्हित होती रहती हैं। पर वे एकदम अन्तर्हित नहीं हो जातीं। वे क्रमश: सूक्ष्मतर होती जाती हैं और प्रयोजन होने पर फिर उठती हैं।

जैसे अचेतन-भूमि से जो कार्य होता है, वह चेतन की निम्न भूमि का कार्य है, वैसे ही ज्ञान की उच्च भूमि से भी – ज्ञानातीत भूमि से भी कार्य होता है। उसमें किसी प्रकार का अहं-भाव नहीं रहता। यह अहं-भाव केवल बीच की अवस्था में रहता है। जब मन इस रेखा के ऊपर या नीचे विचरण करता है, तब किसी भी प्रकार का अहं-बोध नहीं रहता, पर मन की क्रिया तब भी चलती रहती है। जब मन इस रेखा के ऊपर या ज्ञान-भूमि के अतीत प्रदेश में चला जाता है, तब उसे समाधि, अतिचेतन या ज्ञानातीत भूमि कहते हैं।

जब मन विकल्परहित या वृत्तिहीन होता है, तभी मन का लोप होता है और तभी आत्मा प्रत्यक्ष होती है। भाष्यकार श्री शंकराचार्य ने इस अवस्था का वर्णन 'अपरोक्षानुभूति' के रूप में किया है।

हमारा शरीर मानो एक लौहपिण्ड है और हमारा हर विचार मानो धीरे-धीरे उसके ऊपर हथौड़ी की चोट मारना है – उसके द्वारा हम अपनी इच्छानुसार शरीर का गठन करते हैं।

हम अभी जो कुछ हैं, वह सब अपने चिन्तन का ही फल है। अत: अपने चिन्तन के विषय में विशेष ध्यान रखो।

पर्वत की कन्दरा में भी बैठकर यदि तुम कोई पाप-चिन्तन करो, किसी के प्रति घृणा का पोषण करो, तो वह भी संचित रहेगा, और कालान्तर में पुन: तुम्हारे पास दु:ख के रूप में तुम पर प्रबल आघात करेगा। यदि तुम अपने हृदय से ईर्ष्या व घृणा के भाव चारों ओर भेजो, तो वह चक्रवृद्धि ब्याज सहित तुम पर आ गिरेगा। दुनिया की कोई भी ताकत उसे रोक नहीं सकेगी। यदि तुमने एक बार उस शक्ति को बाहर भेजा, तो निश्चित जान लो, तुम्हें उसका प्रतिघात सहना ही पड़ेगा। यह स्मरण रहने पर तुम कुकर्मों से बचे रह सकोगे।

यदि हम जगत् के सारे शुभ विचारों के प्रति स्वयं को खोल दें, तो हम उनके उत्तराधिकारी हो जाते हैं। ○○○
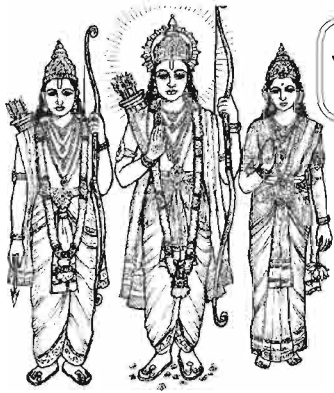
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (१/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

रावण का दुर्भाग्य यही है कि रावण सीताजी का चिन्तन कर रहा है। उनकी एक दृष्टि पाने के लिये व्यग्र है, पर सीताजी किसका ध्यान कर रही है?

एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।६.१८.छं

रावण अगर इतना ध्यान से देखता कि जो मेरी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखती, वह किसके ध्यान में डूबी हुई है, तब तो रावण भक्त हो जाता। पर भगवान राम तो देख रहे हैं कि यह सीताजी के ध्यान में डूबा हुआ है, सीताजी मेरे ध्यान में डूबी हुई हैं, और मेरे उदर में सारा विश्व ब्रह्माण्ड समाया हुआ है, तो कहीं ऐसा न हो कि रावण के हृदय पर मैं बाण चलाऊँ और सारे संसार का विनाश हो जाय। अब आप सोचें कि कितनी एकाग्रता की पराकाष्ठा होगी, जहाँ पर भगवान को यह सोचना पड़ रहा है कि कैसा उपाय करें कि रावण का विनाश हो जाय, पर संसार का विनाश न हो। तब त्रिजटा से श्रीसीताजी ने कहा कि तब तो रावण की मृत्यु होगी ही नहीं। त्रिजटा ने कहा –

काटत सिर होइहि बिकल छूटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान ।। ६.९९

जब प्रभु का बाण लगते ही रावण व्याकुल हो जायेगा और आपका ध्यान छूट जायेगा, तब उसी समय प्रभु उसे मारेंगे। उस प्रसंग में उतने अंतरंग में अभी जाने की आवश्यकता नहीं है, पर मानो सूत्र वही है कि हृदय में परिवर्तन कैसे हो? रावण की समस्या हृदय में है और यह समस्या हम सबके हृदय में है। बुद्धि के द्वारा जाना गया सत्य, क्रिया के द्वारा किया गया कार्य, हृदय में क्यों नहीं आ रहा है?

कहिय सुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहि आई।

यही प्रश्न गोस्वामीजी ने विनय पत्रिका में उपस्थित किया। इसका रहस्य क्या है? क्या कारण है? एक ओर आप विभीषण की दशा पर विचार करके देखें। वहाँ भी वही समस्या है। पिछले वर्ष के प्रसंग से जोड़कर उस पर विचार करने की चेष्टा करें। वह सूत्र वही है। विभीषण जीव है। वह जीव लंका में है। कृपया चैतन्य रहकर सुनेंगे। क्योंकि रामायण में बहुत बढ़िया बात आती है। हनुमान जी जब लंका में गये, तो लंका में रहने वाले प्रत्येक राक्षस के महल में गये। अन्त में रावण के महल में भी गये और फिर विभीषण के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। पर अन्तर एक ही था। जब वे रावण के महल में गये, तो उन्होंने क्या देखा? गोस्वामीजी ने लिखा –

सयन किएँ देखा कपि तेही ।
मंदिर महुँ न दीखि बैदेही।। ५.४.७

रावण गहरी नींद में सो रहा था। जब विभीषण के द्वार पर आकर खड़े हुए? तो गोस्वामीजी ने एक अनोखा वाक्य लिखा। रावण के भवन में गये, तो वह सो रहा था और जब विभीषण के द्वारा पर आकर खड़े हो गये, तो –

तेहीं समय बिभीषनु जागा। ५.५.२

उसी समय विभीषण जाग गये, गोस्वामीजी ने बहुत बढ़िया परिभाषा दी। बोले – जो संत के आने से जाग जाए, वह विभीषण है और जो संत के आने के बाद भी सोता रहे, न जागे, वह दशानन ही होगा। मुझे विश्वास है कि आप लोग विभीषण ही होंगे, क्योंकि यहाँ आकर सो जाएँगे, तब तो उस श्रेणी में चले जाएँगे। तो मूल तत्त्व है कि विभीषण की समस्या वही समस्या है, जो हमारी-आपकी समस्या है। विभीषण स्वभाव से ही धार्मिक हैं। बल्कि भगवान राम ने धर्म को लेकर विभीषण से प्रश्न किया। उन्होंने कहा –

खल मंडली बसहु दिनु राती।
सखा धरम निबहइ केहि भाँती।। ५.४५.५

तुम दुष्टों के बीच में रहकर धर्म का पालन कैसे करते हो? बड़ा आश्चर्य है! अब इसका भी सूत्र प्रारम्भ से ही है। प्रतापभानु राजा रावण बना। ये विभीषण पूर्व जन्म में कौन थे? विभीषण का भी परिचय गोस्वामीजी ने यह कहकर दिया – प्रतापभानु तो हो गया रावण। प्रतापभानु का एक मंत्री था –

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती।
नृप हित हेतु सिखव नित नीती।। १.५४.३

उस मंत्री का नाम क्या था? प्रतापभानु राजा के मंत्री का नाम था धर्मरुचि। वह बड़ा नीतिज्ञ था। वह निरन्तर प्रतापभानु को धर्म और नीति की ओर प्रेरित करता था। पर प्रतापभानु तो रावण बन गया और वही धर्मरुचि विभीषण बन गया। याद रखिए, साधना का श्रीगणेश धर्मरुचि से होता है। धर्मरुचि का अभिप्राय यह है कि प्रारम्भ में हमें धर्म आकृष्ट ही नहीं कर पायेगा, स्वादिष्ट ही नहीं लगेगा, तो उसमें हमें रुचि कैसे होगी? जो वस्तु हमें अच्छी लगती है, उसमें रुचि होती है, तो उस दिशा में हम बढ़ते हैं। इसीलिये वह वाक्य प्रचलित है – **'जो रुचै सो पचै'**।

इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति के जीवन में पहला प्रश्न यह है कि उसके जीवन में धर्म के प्रति रुचि है कि नहीं? धर्म उसे प्रिय लगता है कि नहीं? तो जब विभीषण पूर्वजन्म में धर्मरुचि थे, तब भी यह उनके जीवन में विद्यमान था। वे महान नीतिज्ञ भी थे । बस अन्तर यही था कि प्रतापभानु रावण बन गया और साथ-साथ यद्यपि धर्मरुचि भी शाप के कारण राक्षस बन गये, रावण के भाई बन गये, पर उनके हृदय में मूल वृत्ति ज्यों की त्यों थी। उनमें धर्म के प्रति आस्था थी। जैसे वे पूर्व जन्म में प्रतापभानु को नीति और धर्म की शिक्षा देते थे, उनकी वही भूमिका आपको विभीषण के रूप में भी मिलेगी।

विभीषण प्रारम्भ में धर्मरुचि थे, लेकिन जुड़े हुये थे कहीं-न-कहीं से प्रतापभानु से। प्रतापभानु के कल्याण की वृत्ति पहले भी उनके जीवन में थी और साथ-साथ यहाँ पर भी वे रावण के भाई के रूप में, हितचिन्तक के रूप में जन्म लेते हैं । विभीषण के अन्तर्मन का जो अन्तर्द्वन्द्व है, धर्म को लेकर जो समस्या है, वह समस्या प्रत्येक जीव की है, प्रत्येक साधक की है, वह यह है कि – धर्म क्या है। वही प्रश्न स्वामीजी महाराज ने पिछले वर्ष सामने रखा था – धर्म है क्या?

जहाँ तक धर्म का पालन करना चाहिये, धर्म के सम्बन्ध में विचार करने चलें, तो धर्म को लेकर इतने प्रकार के वाक्य मिलेंगे, कि व्यक्ति भ्रमित हो जाता है कि इनमें से किसे हम स्वीकार करें, किसे अस्वीकार करें और जब ये परस्पर विरोधी जान पड़ें, तब हम क्या करें? कहीं लिखा गया, सत्य बोलना चाहिये, कहीं लिखा गया कि सत्य होते हुये भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिये, कहीं लिखा गया कि कटु होते हुए भी सत्य का प्रयोग करना चाहिये। ऐसे वाक्य आपको मिलेंगे। कहीं पर आपको लिखा हुआ मिलेगा कि पिता की सेवा करना ही सबसे महान धर्म है। कहीं पर मिलेगा कि पिता की अपेक्षा माता का स्थान महान है। इस तरह से धर्म को लेकर इतने परस्पर विरोधी वाक्य आपको मिलेंगे कि उनमें सामंजस्य कर पाना व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन है। एक धर्म को स्वीकार करता है, तो दूसरे धर्म का उसे परित्याग करना पड़ता है। इसलिये रामायण में भरतजी की प्रशंसा 'धर्म-धुरन्धर' से की गई।

प्रारम्भ में धर्म के सम्बन्ध में कुछ चर्चा स्वामीजी महाराज ने की थी। एक-दो प्रश्न भरतजी ने गुरु वशिष्ठ के सामने रखे थे। वे सारे प्रश्न एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जब गुरु वशिष्ठ उनसे कहते हैं – शास्त्र कहता है कि पिता की आज्ञा का पालन करना सबसे बड़ा धर्म है और उसमें उचित और अनुचित का विचार नहीं करना चाहिये। तुम्हारे पिता ने तुम्हें राज्य दिया है, तो तुम्हें स्वीकार कर लेना चाहिये। तो उस समय यह शास्त्र का वाक्य है, उस वाक्य को श्रीभरत ने सुना। उसे सुनने के बाद उन्होंने कुछ प्रश्न उपस्थित किए। वे प्रश्न अत्यन्त महत्त्व के थे। वहाँ गुरु वशिष्ठ के पूरे भाषण को यदि आप पढ़ें, तो उसमें आपको धर्म का एक सांगोपांग निरूपण मिलेगा। उसमें उन्होंने बताया है कि ब्राह्मण का धर्म क्या है, क्षत्रिय का धर्म क्या है, वैश्य का क्या है और शूद्र का क्या है । उन्होंने ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी सबके धर्म का निरूपण किया। अन्त में उन्होंने श्रीभरत से कहा कि तुम्हें राज्य स्वीकार कर लेना चाहिये। उन्होंने कहा कि धर्म इतना सर्वश्रेष्ठ सत्य है कि उसके लिये तुम्हारे पिता ने श्रीराम को छोड़ दिया। श्रीराम के प्रेम में उन्होंने प्राण का परित्याग कर दिया। श्रीराम ने

उस धर्म को इतना प्रामाणिक माना कि वे वन चले गये। अब इसके आगे तुम्हारी भूमिका है। उस धर्म का जो अवशिष्ट भाग है, उसका पालन तुम करो।

श्रीभरत के स्थान पर अगर कोई भी होता, तो वह भ्रमित हो जाता, लेकिन श्रीभरत इस भ्रम में नहीं पड़े। श्रीभरत ने जब उत्तर दिया, तो उस उत्तर में उन्होंने धर्म के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न उठाए। वे प्रश्न बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने गुरु वशिष्ठ और जिन लोगों ने उस धर्म का समर्थन किया था, जिसमें भरत को राज्य लेने के लिये कहा गया था, सबसे विनम्र भाव से प्रश्न किया। गुरु वशिष्ठ ने यही कहा कि पिता की आज्ञा के अनुकूल तुम्हें राज्य स्वीकार करना चाहिये। उसके पश्चात् मंत्रियों ने भी खड़े होकर कह दिया कि अब केवल पिता की आज्ञा का प्रश्न नहीं है, स्वयं गुरुदेव अपने मुख से कह रहे हैं। तब तो आज्ञा और भी अनिवार्य हो गई। जब कौशल्या अम्बा ने भी कह दिया –

पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। २.१७५.१

तो इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु पिताजी के वचन का समर्थन करते हैं। गुरु वशिष्ठ कहते हैं, राज्य स्वीकार कर लो। स्वयं कौशल्या अम्बा कहती हैं। शास्त्र कहते हैं कि गुरु, पिता, माता की बात मानना महानतम धर्म है, तो उसे स्वीकार करना चाहिये कि नहीं? यही धर्म की जटिलता है। इसीलिये श्रीभरतजी के लिये एक महत्त्वपूर्ण शब्द जोड़ा गया और वह शब्द है –

जौं न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धुर धरनि धरत को।। २.२३२.१

धर्म के साथ एक शब्द जोड़ा गया सकल धर्म। इसका अर्थ है कि धर्म के किसी एक अंग को लेकर उसका पालन करने वाले, उससे सम्मान पाने वाले, तो संसार में अनगिनत व्यक्ति मिलेंगे, पर जिसने धर्म के समस्त स्वरूपों को साकार किया हो, ऐसा चरित्र है श्रीभरत का। इसका अर्थ है कि धर्म की व्याख्या बड़ी कठिन थी, बड़ी जटिल थी। इसके साथ-साथ भरत को यह भी याद दिला दिया गया कि यह केवल पिता, माता और गुरु की आज्ञा ही नहीं है, अपितु इससे श्रीराम और सीताजी को सुख मिलेगा –

सुनि सुख लहब राम बैदेहीं। २.१७४.५

सुनकर स्वयं भगवान को इससे बढ़कर कोई प्रसन्नता नहीं होगी, क्योंकि भगवान राम ने तो जिस समय यह सुना कि राज्य भरत को मिलेगा, तो वे गद्गद हो गये। तब तो बड़ा विचित्र-सा लगता है। ईश्वर की भी आज्ञा, पिता की भी आज्ञा, माता की भी आज्ञा, गुरु की भी आज्ञा, अब इसको छोड़कर और कोई दूसरा धर्म हो सकता है क्या? जब श्रीभरत बोलने के लिये खड़े हुये, तो गोस्वामीजी ने यही कहा कि ऐसा नहीं कि कोई भावुक व्यक्ति बोल रहा है। गुरु वशिष्ठ को प्रारम्भ में यह भ्रम था कि भरत भावना प्रधान व्यक्ति हैं। धर्म और मर्यादा की अपेक्षा वे भावुक अधिक हैं। पर गोस्वामीजी भरतजी को उपाधि देते हुये कहते हैं –

भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि। २.१७६

वस्तुत: वे धर्म की धुरा को धारण करने वाले हैं। बड़े धैर्य से वे प्रणाम करते हैं और तब गोस्वामीजी कहते हैं –

बचन अमिअँ जनु बोरि । २.१७६

बोलने में बड़ी विलक्षण श्रीभरत की शैली है। अगर यही बात श्रीलक्ष्मणजी के मुँह से सुनें, तो थोड़ा कड़ुवा सा लगता है। भगवान ने लक्ष्मणजी से कह दिया कि यहाँ अयोध्या में रहकर माता-पिता की सेवा करो, गुरुदेव की सेवा करो, प्रजा की सेवा करो, तो सीधा-सा एक उत्तर मिला गया –

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। २.७१.४

लक्ष्मणजी ने कहा, मैं नहीं जानता कि कौन माता, पिता और गुरु हैं। लगता है कि बड़ी कड़वी बात कह दी गई, पर आप विचार करके देखिए, श्रीभरत जी ने भी कहाँ किसी को माना? न पिताजी की बात मानी, न माँ की बात मानी, न गुरुजी की बात मानी, पर बोलने की शैली में थोड़ी भिन्नता है। जैसे यों कह लीजिए कि शुद्ध घी में जलेबी पकाई जाय और यों ही परोस दी जाय, तब तो वह चाहे जितना शुद्ध घी हो, मैदा हो, पर व्यक्ति को तो उसमें स्वाद की अनुभूति नहीं होगी। यदि उसी को शीरे में डुबो दिया जाय तो क्या कहना! तो लक्ष्मणजी तो बस शुद्ध घी और मैदे की जलेबी को परोस देते हैं। शीरे में नहीं डुबाते। भरतजी उसे शीरे में डुबो देते हैं –

भरत कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि।। २.१७६

(क्रमशः)

सारगाछी की स्मृतियाँ (५०)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – मैं जब स्वयं को इस देह-मन-बुद्धि का अथवा सभी जीवों के देह-मन-बुद्धि का साक्षी देखूँगा, तब क्या इन्हें चैतन्यमय देखूँगा?

महाराज – नहीं, जैसे अभी देख रहा हूँ, ठीक वैसे ही देखूँगा। लेकिन यह स्पष्ट देख पाऊँगा कि मैं इन सबसे पृथक् हूँ। इसके पश्चात् देखूँगा कि जीव-जगत चैतन्यमय है।

प्रश्न – ये देह-मन-बुद्धि तो प्राण और आकाश के सम्मिलित शक्ति से गठित हुए हैं? किस अवस्था में यह समझ में आता है कि सभी दृश्य पदार्थ एक ही प्राण-आकाश के सम्मिलित रूप हैं। क्या साधक अनाहत ध्वनि सुनता है, जहाँ प्राण का प्रथम विकास होता है?

महाराज – इसके बारे में थोड़ी दृष्टि सूक्ष्म होने पर ही जाना जा सकता है। किन्तु साधना के मार्ग में बहुत दूर जाना पड़ता है। किसी-किसी को लगता है कि अनाहत ध्वनि सुन रहे हैं। असल में, ध्यान करते-करते मस्तिष्क में एक प्रकार का रिमझिम शब्द होता रहता है, उसे ही वह अनाहत ध्वनि समझ लेता है। यदि वस्तु का विश्लेषण किया जाय, तो वह प्राण में परिणत होगी, फिर यदि प्राण का अधिक विश्लेषण करो, तो वह चैतन्य में रूपान्तरित हो जायेगा।

३-११-१९६०

प्रश्न - सृष्टि कैसे आरम्भ हुई?

महाराज – ब्रह्म ने स्वयं को विद्यामाया के आवरण में अंश-अंश करके रख दिया। तत्पश्चात् प्रत्येक 'मैं' के ऊपर अविद्या का आवरण पड़ गया। तब उसी अविद्या के आवरण से मानो धीरे-धीरे बुद्धि, बुद्धि से मन, प्राण, देह दृष्टिगोचर होने लगे।

प्रश्न – प्रत्येक व्यक्ति का संसार पृथक् है। किन्तु सभी लोग इस संसार की दृश्य वस्तुओं को एक जैसा ही क्यों देखते है?

महाराज – मानो एक काले परदे को असंख्य अंशों में विभाजित करने जैसा है। एक प्रकार के माध्यम से देखने के कारण ये सभी वस्तुएँ एक जैसी दिखाई पड़ती हैं। अविद्या के आवरण में आवृत होकर मैं क्या देखता हूँ? उसी अविद्या को ही देखता हूँ। प्रतिदिन सुषुप्ति में हम उसी मूल अविद्या में चले जाते हैं। तदुपरान्त उसी अविद्या से जगत प्रक्षेपित होता है। जैसे अंधकार में बहुत देर तक देखते-देखते विविध वस्तुएँ दिखाई पड़ने लगती हैं, लगभग वैसे ही हमारी यह जाग्रत अवस्था है। उदान वायु जब प्राण को ऊपर की ओर खींच ले जाती है, तब सुषुप्ति होती है। सुषुप्ति में सभी स्नायुकेन्द्र निष्क्रिय हो जाते हैं। इसके बाद बुद्धिवृत्ति में स्नायु केन्द्र-समूह कुछ सबल हो जाते हैं, तब जाग्रत अवस्था के कुछ-कुछ संस्कार मिश्रित विभिन्न वस्तुओं को देखकर मन उलटा-पुलटा अव्यवस्थित क्रम में देखता है। जैसे छोटा बच्चा पिता की टेबल पर बैठा है। किन्तु यह अवस्था जाग्रत से खराब है। क्योंकि जाग्रत अवस्था में बुद्धि क्रिया करती है। किन्तु यहाँ सुषुप्ति में स्वभावत: सहज प्रवृत्ति से कार्य होता है। यहाँ बुद्धि की कोई क्रिया नहीं होती, अर्थात् कोई नियंत्रण नहीं रहता।

मनुष्य की अस्थाई जागृति (temporary awakeness) अचानक नहीं होती। उसके अवचेतन मन में बहुत दिनों से क्रिया चल रही थी। मानसिक क्रियाओं के प्रति सावधान नहीं रहने के कारण अचानक एक घटना घट गई। इसीलिए तुम लोगों से बार-बार कहता हूँ कि डायरी लिखो। मन रूपी घूँघटवाली (दुलहन) पता नहीं कब क्या कर बैठे। जितने दिन शरीर रहेगा, काम-क्रोध-लोभ रहेंगे ही, जाएँगे नहीं। किन्तु बुद्धि द्वारा विचार कर दबाकर रखना होगा। इसीलिए इस देह में मल है, अब इस मल से मुक्ति पाने के

लिए देह-घर से बाहर नहीं जाने पर शान्ति कहाँ मिलेगी?

जितना विनम्र बनोगे, उतना विजयी बनोगे। लोगों को धमकाने से वे लोग तुम्हें प्रणाम करेंगे, किन्तु यदि उनका हृदय पाना चाहते हो, तो हृदय से प्रेम करो। जैसी क्रिया होती है, वैसी ही प्रतिक्रिया होती है। कोई नायक, मार्गदर्शक नहीं है, कोई बोलनेवाला नहीं है, सर्वाधिक अभाव हृदय का है।

association (साहचर्य) और idendification (तादात्म्य) दो चीजें हैं। मैंने स्वयं को इस देह के साथ जो आवरण और विक्षेप किया है, उससे identified तादात्म्य किया है, मैं स्वयं को यह देह समझता हूँ। किन्तु मेरा कुर्ता कहते ही association (साहचर्य) समझ में आता है। जिस देह के साथ मैंने अपने को तादात्म्य किया है, उसी देह के साथ कुर्ता का association (साहचर्य) का अनुभव करता हूँ। स्वयं को कभी भी देह के अतिरिक्त अन्य किसी के साथ identified (तादात्मय) करने से काम नहीं चलता।

identification = permanent association

association= temporary identification.

तादात्म्य = स्थायी साहचर्य या सम्बन्ध

साहचर्य = अस्थायी तादात्म्य

सारे दिन तो जप-ध्यान कर नहीं सकोगे, उसे ठीक रखकर शेष शक्ति को कार्य में लगाना चाहिए। इसमें अपना, स्वामीजी का कार्य, जगत का कल्याण, सब कुछ होगा। कार्य किये बिना रह ही नहीं सकोगे, इसलिए दूसरों के हितकर कार्य करो। एक आन्दोलनकारी भागकर उत्तरकाशी में साधु हो गया, किन्तु वह ध्यान-जप नहीं कर सकता था। जहाँ साधु लोग रहते थे, वह नदी-तट गंगा की जलधारा से टूट गया था। उसने सारे दिन वहाँ पत्थर एकत्र करके बाँध बना दिया। मैमन सिंह के गाँव में 'कुदाल बाबा' नामक एक व्यक्ति थे, गाँव में दो वर्षों तक एक बगीचा बनाकर फिर दूसरे गाँव में चले जाते थे।

१७-११-१९६०

प्रश्न – ज्ञानी का कार्य कैसा होता है?

महाराज – ज्ञान हो जाने पर ज्ञानी इस देह-मन-बुद्धि के प्रत्येक कार्य का साक्षी मात्र रहता है, बिल्कुल निर्लिप्त रहता है। जैसे - मथुरा दास, तैलंग स्वामी। ठाकुर, माँ की अलग बात है, ये लोग जबरदस्ती मन को नीचे उतारकर रखते थे। तोतापुरी भी अपवाद थे। ब्रह्म-जीव-जगतविशिष्ट **सर्वं खल्विदं ब्रह्म**, इस अवस्था का अतिक्रमण कर, इसके अतीत चले गये थे। ठाकुर वहाँ से उतारकर उन्हें नीचे लाते हैं।

प्रश्न – क्या भगवान से प्रार्थना करने पर धीरे-धीरे तन-मन का बन्धन कट जाएगा?

महाराज – एक वाक्य में इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। ध्यान हृदय में करना, मस्तक में नहीं। हृदय में ध्यान करने में मन न लगे, तो ऐसा चिन्तन करना कि सामने सिंहासन पर वे (आराध्य इष्ट) बैठे हुए हैं।

१८-११-१९६०

महाराज – समुद्र की तरंग समुद्र में विलीन हो जाती है। चीनी बनना नहीं चाहता, चीनी खाना अच्छा लगता है। यह ठाकुर की वाणी है। ये सब बातें सुनकर हमें भय लगने लगता है। यह जो भगवान के चरण-तल में गिरकर केवल क्रन्दन है, वह दुर्बल कर देता है। अपितु, यदि मैं यह जानूँ कि मैं वही (शुद्ध अखण्ड निर्गुण ब्रह्म) हूँ, नीचे उतरते-उतरते यह (जीव) हो गया हूँ, फिर ऊपर उठते-उठते निर्गुण हो जाऊँगा, तब मन में साहस आता है। ऐसा लगता है जैसे उनके ऊपर अधिकार है। तब उनके ऊपर भक्ति होती है एवं तभी सगुण ब्रह्म के निकट प्रार्थना की जा सकती है।

खूब मन लगाकर सुनो, जिससे थोड़ी-सी भी भूल न हो। पहले देह-मन-बुद्धि, तत्पश्चात् कारण, आनन्दमय कोश, तदनन्तर महाकारण, अन्त में निर्गुण ब्रह्म। निर्गुण ब्रह्म से सृष्टि नहीं होती, सगुण से होती है। आनन्द से सृष्टि नहीं होती है, आनन्दमय से सृष्टि होती है। हमारे ठाकुर निर्गुण ब्रह्म हैं। माँ सगुण ब्रह्म हैं। माँ मानो निर्गुण समुद्र की एक तरंग हैं और हम सभी छोटी-छोटी तरंगें हैं, माँ हमें पथ दिखाकर विलीन हो गईं। क्या मार्ग है? निर्गुण को कैसे पाया जा सकता है, वही पथ है। हम सब क्षर हैं, माँ अक्षर हैं, ठाकुर पुरुषोत्तम हैं। (**क्रमशः**)

पीछे देखने की आवश्यकता नहीं है – आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त धैर्य चाहिए, तभी महान कार्य सम्पन्न होगा।

– स्वामी विवेकानन्द

श्रीमाँ सारदा देवी के पत्र

अनुवाद : स्वामी धरणीधरानन्द

ॐ रामकृष्ण जयति

१४-३-१९०२

२९ फाल्गुन, १३०८

प्रिय बेटा, शुभाशीर्वाद।

आज तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। मैंने सुना कि तुम्हारे मकान मालिक की मृत्यु हो गई है। यह सुनकर मुझे दुख हुआ, परन्तु सोचकर देखो कि सभी की एक ही गति है, इसलिए चिन्ता करना व्यर्थ है। मैं ठाकुर के निकट यही प्रार्थना करती हूँ कि उनकी कृपा से उनकी सद्गति हो। मैंने सुना कि तुमने वस्त्र भिजवाया है। तुमने ठाकुर के उत्सव के सम्बन्ध में लिखा है। अपना कार्य वे ही करेंगे। यह सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि वसन्त नामक लड़का तथा उसके साथ एक अन्य लड़का वहाँ तुम्हारे साथ है। मेरी यही इच्छा है कि उनकी कृपा से उन लोगों को ईश्वर की प्राप्ति हो। हम लोग ठीक हैं। तुम लोगों की कुशलता का समाचार बीच-बीच में लिखना। इति।

पत्र पाने वाले का नाम और पता :
स्वामी रामकृष्णानन्द
कैसल कर्नन, ९ मैक्लीन
ट्रीप्लिकेन, मद्रास

×××

श्रीहरिपद-भरोसा

१९०२

२० पौष, १३०९,रविवार

प्रिय बेटा,

तुम्हारा पत्र पाकर मैं बहुत खुश हुई। तुम बहुत सावधान रहना। ठाकुर से मैं हमेशा तुम्हारे लिए प्रार्थना करती हूँ कि तुममें भगवान के प्रति भक्ति हो एवं वे तुम पर कृपा करें। मेरी यही इच्छा है कि तुम लोगों की ठाकुर के प्रति भक्ति हो और वे दया करके तुम लोगों को शान्ति प्रदान करें। ऐसा होने से मुझे बहुत आनन्द होगा। यह बात मतिलाल से कहना। कालीकृष्ण बाबू को मेरा आशीर्वाद कहना। तुम लोग भी मेरा आशीर्वाद ग्रहण करना। मैं ठाकुर की कृपा से अच्छी हूँ। यहाँ सभी स्वस्थ हैं। तुम लोगों का समाचार पाकर मुझे बहुत खुशी होती है, इसलिए वहाँ की कुशलता का समाचार लिखना। इति।

विशेष द्रष्टव्य : पत्र शायद स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखा गया है। पत्र में कोई पता नहीं लिखा है।

××

ॐ रामकृष्ण जयति

१५.१.१९०३

२९ पौष, १३०९, मंगलवार

प्रिय बेटा,

तुम्हारे पत्र से सभी समाचार मालूम हुए। तुम्हारे दो पत्रों से चित्र प्राप्त हुए। चित्र के लिए मेरे मन में इच्छा हुई थी। तुम्हारे द्वारा भेजे गए चित्र पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। तुमने लिखा है कि ध्यान करने से तुम्हारा दिमाग खराब होने लगता है। मैं कहती हूँ कि अधिक जप करने से क्या दिमाग खराब होगा? जितना हो सके, जप करना। ठाकुर कहते थे कि स्मरण-मनन करना चाहिए। प्रार्थना करने पर सभी बाधाओं से छुटकारा मिलता है। इसी प्रकार कार्य करते रहो। मैं अच्छी हूँ एवं घर में सभी सकुशल हैं। तुम लोग मेरा आशीर्वाद ग्रहण करना। कलकत्ता में सभी सकुशल हैं। इति।

सारदा का एक पत्र प्राप्त हुआ है। वह अभी जापान जा रहा है। महासागर में दिन-रात लगातार ६ दिनों तक भयानक आँधी और वर्षा होने के कारण उसे बहुत कष्ट हुआ।

विशेष द्रष्टव्य : पत्र शायद स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखा गया है। पत्र में कोई पता नहीं लिखा है।

××

ॐ रामकृष्ण जयति

२७.२.१९०८

१४ फाल्गुन, बुधवार

प्रिय बेटा,

आज यथासमय तुम्हारा लिफाफा और पोस्टकार्ड मिला। मैं तुमको आशीर्वाद देती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि श्रीठाकुर के प्रति तुम्हारी भक्ति हो। तुम्हें कोई डर नहीं है। मैं कहती हूँ कि शुद्ध मन से भगवान को पुकारने पर तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। मैं अच्छी हूँ, परन्तु घर में सब लोग बीमार हैं। इति।

तुम लोगों की मंगलमयी माँ

पत्र पाने वाले का नाम और पता :
श्री निर्मलचन्द्र दास घोष
कुमारकृष्ण बहादुर का मकान नं. १०७
पो. - ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ता

××

आध्यात्मिक जिज्ञासा (१२)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

– क्या किसी युक्ति से समझाया नहीं जा सकता?

महाराज – युक्ति यह है, हम लोग जो चाहते हैं, उसी गुण से उन्हें (ईश्वर को) विभूषित करते हैं।

– अर्थात् मनोभाव। हमलोगों का जैसा मनोभाव है, उसे ही ईश्वर का गुण कह रहे हैं, तब तो हमलोग ईश्वर को जो दयालु कहते हैं, या अन्य जो गुण हैं, वे वास्तविक नहीं हैं, सत्य नहीं हैं।

महाराज – जिसने ईश्वर की अनुभूति की है, वह बता पायेगा। जिसने ईश्वर की अनुभूति नहीं की, वह कैसे कहेगा कि वे कैसे हैं? इसलिए वह भी दयालु कहता है, क्योंकि वह भी दया का प्रार्थी है। सिक्खों ने ठाकुर से कहा – "भगवान दयामय हैं।" ठाकुर कहते हैं – "दयामय क्यों? उनलोगों ने कहा – "उन्होंने हमारे लिये यह किया है, वह किया है।" ठाकुर कहते हैं उनकी सन्तान का वे पालन करेंगे, इसमें क्या वीरता है?"

(९)

प्रश्न – महाराज। ठाकुर ने एक स्थान पर कहा है, "जिसने एक बार भी सच्चे हृदय से पुकारा है, उसे हमारे पास आना होगा। यहाँ 'आना होगा' इसका क्या अर्थ है?

महाराज – यह तो ठीक ठाकुर की बात नहीं हुई। ठाकुर ने कहा है, "जिनका ठीक-ठीक ईश्वर पर विश्वास है, उन्हें यहाँ आना होगा।"

– ठाकुर ने और भी कहा है – "जो यहाँ आये हैं, उनका यह अन्तिम जन्म है।" इस कथन का क्या तात्पर्य है?

महाराज – जो लोग यहाँ आयेंगे, उनका यह अन्तिम जन्म है। उन्हें अब पुर्नजन्म नहीं लेना पड़ेगा – 'जन्मबन्धविनिर्मुक्त:'। गीता के शब्दों में बोलने पर समझ सकोगे, और ठाकुर के शब्दों में बोलने पर नहीं समझ सकोगे? "जन्मबन्धविर्निमुक्त: पदं गच्छन्त्यनामयम्।"

– ठाकुर ने कहा है, 'यहाँ जो आयेंगे ...'। तो जब ठाकुर थे, जो लोग वहाँ गये हैं, क्या वे लोग मुक्त हो गये हैं? अब हम लोगों का क्या होगा? श्रीमाँ ने एक प्रसंग में कहा है, जब तक थोड़ी-सी भी वासना रहेगी, जीव को पुन: आना होगा। यहाँ आने के बाद, भगवान को पुकारने के बाद, मान लीजिए माया में फँस गया, मन में वासना जग गयी, इसीलिये उसकी मुक्ति नहीं हो रही है। किन्तु ठाकुर कहते हैं, यहाँ जो आयेंगे, उनका अन्तिम जन्म होगा। ठाकुर और श्रीमाँ की वाणी में कुछ विरोधाभास देखा जा रहा है। ऐसा है न महाराज?

महाराज – ठीक कह रहे हो। असली बात है, वासना रहने पर स्वाभाविक रूप से हमलोगों को पुन: आना होगा।

– तब क्या ये दोनों बातें अलग नहीं हो रही हैं कि जो यहाँ आयेंगे, उनका अन्तिम जन्म होगा और वासना रहने से पुन: आना होगा?

महाराज – अर्थात् यहाँ आकर वासनारहित होओगे। ठाकुर कहना चाहते हैं, यहाँ जो लोग आयेंगे, वे धीरे धीरे वासना-रहित होंगे।

– कल ठाकुरजी का सार्वजनिक महोत्सव था। कल तो लाख-लाख लोग यहाँ आये थे, तो क्या सबकी मुक्ति हो जायेगी?

महाराज – वे लोग यहाँ नहीं आये थे। वे लोग मेला में आये थे।

– सभी लोग तो बेलूड़ मठ में आये हैं, तब इधर आने का क्या तात्पर्य है?

महाराज – यहाँ आने का तात्पर्य है, जिन लोगों ने यहाँ जीवन समर्पण किया है। आने का अर्थ है, उनके भाव को पूर्ण रूप से, सम्पूर्ण अन्त:करण से ग्रहण करना। **(क्रमश:)**

ईसामसीह का जीवन तथा सन्देश

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''ईश्वर मनुष्य की देह धारण करके आते हैं। यह सत्य है कि वे सर्वत्र और सर्वभूतों में हैं, परन्तु अवतार के बिना जीवों की आकांक्षा की पूर्ति नहीं होती, उनकी आवश्यकताएँ नहीं मिटतीं।'' प्रत्येक धर्म में ऐसे अवतार और संतों का जन्म होता है, वे जीवों को सन्मार्ग का उपदेश देते हैं।

जिस प्रकार हिन्दुओं के लिए वेदादि ग्रन्थ पवित्र माने जाते हैं, उसी प्रकार ईसाई-मतावलम्बियों के लिए बाईबिल एक पवित्र और प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। ईसामसीह की जीवन गाथा का वर्णन बाईबिल के नव-विधान (New Testament) में आता है। ईसाई-धर्म में ईसा मसीह साक्षात् ईश्वर, ईश्वर के पुत्र अथवा मसीहा माने जाते हैं। बाईबिल के अनुसार हम ईसा के जीवन एवं उपदेश का चिन्तन करेंगे।

ईसा का जन्म

ईसा की माता का नाम मॅरी था। वे गेलिली के नाजरथ में रहती थीं। उनका विवाह जोसेफ से होने वाला था, जो बढ़ई का कार्य करते थे। किन्तु विवाह के पूर्व एक स्वर्गदूत मॅरी के सामने प्रकट हुए और उन्होंने कहा, 'तुम धन्य हो और ईश्वर ने तुम्हें कृतार्थ किया है... तुम गर्भवती होगी और तुम्हारा एक पुत्र होगा, जिसका नाम तुम येशु रखोगी। वह महान होगा और सर्वोच्च प्रभु का पुत्र कहलाएगा।' मॅरी यह सुनकर भयभीत हो गईं और बोलीं, 'मैं अविवाहिता हूँ, यह कैसे सम्भव होगा?' स्वर्गदूत ने कहा, 'पवित्र आत्मा तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होगी, इसलिए वह शिशु 'ईश्वर का पुत्र' कहलाएगा।' स्वर्गदूत ने जोसेफ को भी यही संदेश दिया कि उनकी होने वाली पत्नी एक पुत्र को जन्म देगी, जो लोगों को उसके पापों से मुक्त करेगा। इसके बाद मॅरी और जोसेफ का विवाह होता है।

विवाह के बाद वे बेथलेहम नगर जाते हैं। वहाँ मॅरी प्रसव पीड़ा का अनुभव करती हैं। एक अस्तबल जहाँ पशुओं के रुकने का स्थान होता है, वहाँ वे एक पुत्र को जन्म देती हैं। उनके जन्म होते ही अनेक स्वर्गदूत वहाँ आते हैं और वे चरवाहों को शुभ सन्देश देते हैं कि ईश्वर के पुत्र और यहूदियों के राजा ने जन्म ले लिया है।

जेरुसलम यहूदियों का पवित्र स्थान था। वहाँ का राजा हेरोद बड़ा ही दुष्ट था। जब उसे पता चला कि ईश्वर के पुत्र का जन्म हो गया है, तो उसने उसका पता लगाने के लिए कुछ लोगों को बेथलेहम भेजा, ताकि वह उसे मार सके। उन लोगों ने वहाँ जाकर शिशु को अनेक उपहार दिए। किन्तु वे राजा के पास न लौटकर अपने गाँव चले गए। इससे राजा हेरोद अत्यन्त क्रोधित हो गया। उसने आदेश दिया कि उस क्षेत्र में जितने भी दो या दो वर्ष से कम उम्र के बच्चे हैं, उन्हें मार दिया जाए। किन्तु ईश्वर जोसेफ को स्वप्न में आदेश देते हैं कि वे अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर इजिप्त चले जाएँ। इस प्रकार हेरोद की मृत्य होने तक वे वहीं रहे और पुन: अपने गाँव नाजरथ आ गए ।

कुमार ईसा

ईसा अब बारह वर्ष के हो गए। प्रति वर्ष जोसेफ अपने परिवार के साथ एक विशेष अवसर पर जेरुसलम मन्दिर जाते थे। इस वर्ष भी वे मन्दिर गए और अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के बाद अपने गाँव की ओर रवाना हुए। उन्हें लगा कि बालक ईसा भी उनके और गाँव वालों के साथ चल रहा है। काफी समय चलने के बाद उन्होंने देखा कि ईसा कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा है। अपने बेटे को ढूँढ़ते हुए वे पुन: जेरुसलम मन्दिर पहुँचे। वहाँ वे देखकर आश्चर्यचकित हो गए कि उनका पुत्र ईसा मन्दिर के पण्डितों से ज्ञान-चर्चा कर रहा है। वहाँ सभी लोग बालक की मेधा पर चकित हो जाते हैं। माँ ने ईसा को उलाहना देते हुए कहा, 'तुमने ऐसा क्यों किया? तुम्हारे पिता और मैं तुम्हारे लिए कितना चिन्तित थे।' बालक ईसा ने कहा, 'इसमें चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है, क्या आपको पता नहीं था कि मैं अपने पिता (ईश्वर) के पास ही रहूँगा।' इस प्रकार समय बीतते ईसा युवावस्था को प्राप्त हुए।

जॉन द बाप्टिस्ट

अब हमारे सम्मुख एक दूसरा दृश्य उपस्थित होता है,

जॉन द बॉप्टिस्ट का। ये जॉन द बॉप्टिस्ट कौन हैं? जिस प्रकार हमने देखा कि ईसा के जन्म के पूर्व उनके माता-पिता को दर्शन हुए थे, उसी प्रकार एक दम्पती एलिजाबेथ और जेकेरिया को ईश्वर के दूत ने दर्शन दिए थे। स्वर्गदूत ने उनसे कहा कि उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म होगा। उसका जन्म ईश्वर के पुत्र (ईसा) से पहले होगा और वह उनके कार्य में सहायक होगा।

इस प्रकार जॉन का जन्म हुआ। आगे चलकर वे बहुत बड़े साधक हुए। उनका अधिकांश समय तपस्या में ही बीता। वे लोगों के सामने घोषणा करते थे कि अपने पापकर्म करना बन्द करो, क्योंकि ईश्वर का राज्य तुम्हारे समीप है। अनेक लोग उनके सम्मुख अपने पाप-कृत्यों को स्वीकार करते थे और जॉन उनका शुद्धीकरण करते थे। इसे ईसाई धर्म में बपितस्मा (Baptisation) कहा जाता है। जॉन जोर्डन नदी के किनारे लोगों को जल से बाप्टाईज करते थे। वे 'ईश्वर के पुत्र' के आगमन का लोगों को इस प्रकार संकेत देते थे, 'मैंने आप लोगों को इसलिए बाप्टाईज किया है क्योंकि आपने पश्चात्ताप किया है, किन्तु मेरे बाद जो आएँगे, वे आपको पवित्र आत्मा और अग्नि से बाप्टाईज करेंगे।'

ईसा का शुद्धीकरण (Baptism)

युवक ईसा भी अन्य व्यक्तियों के समान जॉन के पास शुद्धीकरण के लिए आए। ईसा तो जन्म से ही शुद्ध थे, उन्हें इस प्रकार के किसी भी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं थी। उस समय उनकी आयु लगभग तीस वर्ष की थी। जॉन भी उन्हें देखकर पहचान गए कि ये वही ईश्वर के पुत्र हैं, जिनके लिए उनका आना हुआ है। जॉन ने उनसे कहा, 'मैं तो आपसे ही शुद्धीकरण चाहता हूँ और आप मेरे पास आए हैं।' ईसा ने उनसे कहा, 'ऐसा ही होने दो, ईश्वर यही चाहते हैं कि आप मेरा शुद्धीकरण करें। हम भी वैसा ही करें, जो सर्वथा उचित है।'

बाईबल में वर्णन आता है कि शुद्धीकरण प्रक्रिया के समय जैसे ही ईसा जॉर्डन नदी में डुबकी लगाकर ऊपर उठते हैं, तब वे देखते हैं कि ईश्वर की पवित्र आत्मा पंछी के रूप में उनके भीतर आविष्ट हो गई। एक आकाशवाणी हुई, 'यह मेरा पुत्र है, मैं इसे प्रेम करता हूँ और इस पर प्रसन्न हूँ।'

ईसा की तपस्या

ईसा मरुभूमि में तपस्या के लिए चले गए। बाईबल में ऐसा वर्णन आता है कि उन्होंने चालीस दिनों तक उपवास किया। वहाँ शैतान उन्हें प्रलोभन देने के लिए आया। प्रत्येक साधक के जीवन में हम देखते हैं कि प्रलोभन उनके साधन-काल में उपस्थित होते हैं और यहीं साधक की परीक्षा होती है। चालीस दिनों के उपवास के अन्त में जब ईसा क्षुधा से व्याकुल हो गए, तब शैतान ने उनके पास आकर कहा, ''यदि तुम ईश्वर के पुत्र हो, तो इन पत्थरों को रोटियों में परिवर्तित कर दो।'' ईसा के कुछ जीवनीकार कहते हैं कि यह प्रलोभन ईसा को समाज-सुधारक बनाने जैसा था, जिससे निर्जन प्रदेश में जहाँ पत्थरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, वहाँ वे अपार जनसमूह को रोटियाँ खिला सकें। ईसा उत्तर देते हैं, ''मनुष्य केवल रोटी नहीं चाहता, वह ईश्वर के मुख से निःसृत प्रत्येक शब्द को सुनना चाहता है।'' यह प्रथम प्रलोभन था।

इसके बाद शैतान उन्हें जेरुसलम में मन्दिर के सर्वोच्च शिखर पर खड़ा कर कहता है, 'यदि तुम ईश्वर के पुत्र हो, तो नीचे कूद पड़ो, क्योंकि पवित्र ग्रन्थ कहते हैं कि ईश्वर अपने दूतों को तुम्हें बचाने के लिए आदेश देंगे। वे दूत तुम्हें अपने हाथों से उठाएँगे और पत्थर पर गिरने से तुम्हारे पैरों पर चोट नहीं लगेगी।' ईसा ने कहा, ''मूसा ने कहा है कि इस प्रकार हमें ईश्वर की परीक्षा नहीं लेनी चाहिए।'' जीवनीकारों के अनुसार यह दूसरा प्रलोभन ईसा को नाम-यश के प्रति आकर्षित करने के लिए था।

अब शैतान उन्हें अत्युच्च पर्वत पर ले गया। उसने ईसा को विश्व के सभी सुन्दर राज्य दिखाए और कहा, ''यह सब ऐश्वर्य मैं तुम्हें प्रदान करूँगा, यदि तुम मेरे सामने नतमस्तक होकर मेरी महत्ता स्वीकार करो।'' ईसा ने कहा कि पवित्र ग्रन्थ कहते हैं कि हमें केवल अपने प्रभु की ही आराधना और सेवा करनी चाहिए। यह तीसरा और अन्तिम प्रलोभन था।

धर्मगुरु के रूप में ईसा

ईसा को ज्ञात हुआ कि दुष्ट राजा के सैनिकों ने जॉन द बॉप्टिस्ट को जेल में डाल दिया है। वे वहाँ से अपने गेलिली राज्य में आए और धर्मप्रचार का कार्य आरम्भ किया। वे लोगों से कहते थे कि ईश्वर का राज्य आपके समीप है, आप पापकर्म त्याग कर ईश्वर की आराधना कीजिए।

अवतारों के जीवन में हम देखते हैं कि वे अपने ऐसे कुछ शिष्यों को चुनते हैं, जिनके द्वारा वे अपने भाव का प्रचार कर सकें। एकबार ईसा गेलिली झील के किनारे जा रहे थे। उन्होंने देखा कि दो भाई, पीटर और एन्ड्रु जाल बिछाकर मछली पकड़ रहे हैं। ईसा ने उनसे कहा, 'मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें सिखाऊँगा कि मनुष्य किस तरह पकड़े

जाते हैं?' तुरन्त उन्होंने अपना सब कार्य छोड़कर ईसा का अनुसरण किया। ठीक इसी प्रकार उन्होंने जेम्स और जॉन नामक भाइयों को भी अपना अनुसरण करने को कहा और वे भी ईसा के शिष्य बन गए। इस प्रकार एक-एक करके ईसा के बारह शिष्य हुए।

ईसा गाँव-गाँव जाकर लोगों को उपदेश देते थे। रोगी लोगों को ठीक करते थे, उत्पीड़ितों को सान्त्वना देते थे, यहाँ तक कि मृत व्यक्ति को भी पुनरुज्जीवित कर देते थे। वे जहाँ भी जाते थे, लोगों की भीड़ मच जाती थी। उनकी प्रसिद्धि और चमत्कारों पर पादरियों की सूक्ष्म दृष्टि रहती थी, वे इस ताक में रहते थे कि किस प्रकार उनको फँसाया जाए।

ईसा के कुछ चमत्कार

एक चर्मरोगी ईसा के पास आकर प्रार्थना करता है, "यदि आपकी इच्छा हो, तो आप मुझे ठीक कर दीजिए।" ईसा उस रोगी को स्पर्श कर कहते हैं, मेरी इच्छा है कि तुम स्वस्थ हो जाओ। रोगी तुरन्त स्वस्थ हो जाता है।

ईसा अपने शिष्यों के साथ नाव में जा रहे थे। अचानक भारी तूफान के कारण नाव के डूबने की आशंका होती है। शिष्यों ने घबराकर उनसे रक्षा की प्रार्थना की। ईसा ने कहा, 'इसमें चिन्ता की क्या बात है। तुमलोगों में इतनी भी श्रद्धा नहीं।' ईसा आँधी-तरंगों को रुकने का आदेश देते हैं और सब कुछ शान्त हो जाता है।

दृष्टान्त के रूप में उपदेश

ईसा कहते हैं, "स्वर्ग का राज्य इस प्रकार है। कुछ मछुवारों ने तालाब में जाल फेंका। जब जाल मछलियों से भर गया, तो उन्होंने मछलियों को चुनना शुरु किया। अच्छी मछलियों को टोकरियों में रखा गया और खराब मछलियों को फेंक दिया गया। इसी प्रकार अन्तिम समय में स्वर्गदूत आएँगे और जिन लोगों ने सत्कर्म किए हैं, उन्हें साथ ले जाएँगे तथा अनुचित कर्म करने वालों को दण्ड देंगे।"

कुछ शिष्यों ने ईसा के पास आकर प्रश्न किया कि स्वर्ग के राज्य में सबसे श्रेष्ठ कौन है? ईसा ने एक बालक को सामने खड़ा कर कहा, "जब तक तुम्हारे अन्दर ऐसी शिशुसुलभ सरलता नहीं आती, तब तक तुम ईश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते।" अर्थात् स्वर्ग के राज्य का वही अधिकारी है, जो बालक के समान सरल और निष्कपट है।

अपने अन्तिम समय का पूर्वाभास देना

ईसा ने स्वयं के विषय में अपने शिष्यों से कहा कि उन्हें जेरुसलम जाना होगा और वहाँ के पादरियों और उच्चाधिकारियों द्वारा अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ेंगी। उन्हें मृत्युदण्ड दिया जाएगा, किन्तु तीन दिनों के उपरान्त वे पुन: जीवित हो उठेंगे।' शिष्यगण यह सुनकर दुखी हो गए।

ईसा एक दिन जेरुसलम मन्दिर में गए। उनके आगे-पीछे भीड़ लगी हुई थी। मन्दिर में प्रवेश कर उन्होंने देखा कि इस पवित्र स्थान पर भी लोग सांसारिक व्यापारों में मग्न हैं। वे क्रोध में आकर सबको धिक्कारते हैं। वहाँ वे लोगों को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं और अनेक लोगों को रोगमुक्त करते हैं।

पादरियों ने जब सुना कि ईसा स्वयं को ईशपुत्र कहते हैं, तो उन्होंने ईसा को दण्ड देने का षड्यन्त्र किया। ईसा ने पहले ही भविष्यवाणी की थी कि उनके बारह शिष्यों में से एक उन्हें धोखा देगा और उनके मृत्युदण्ड का कारण होगा। उसका नाम जूडास था। पादरियों ने जूडास की सहायता से ईसा को बन्दी बनवाया और उनके ऊपर तरह-तरह के आरोप लगाए। उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया।

ईसा को सूली पर चढ़ाने के लिए आदेश दिया गया। उनका उपहास करने के लिए उनके पुराने कपड़े फाड़कर नए कपड़े पहनाए गए। उनके सिर पर काँटों का मुकुट पहनाया गया। उनका बार-बार अपमान किया गया। ईसा का मजाक करते हुए सैनिकों ने कहा कि इसने दूसरों को बचाया, पर स्वयं को नहीं बचा सकता। किन्तु ईसा ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, "हे ईश्वर! इन्हें क्षमा कर दो। इन्हें नहीं पता कि ये क्या कर रहे हैं।" इस प्रकार ईसा प्राण त्याग देते हैं।

ईसा ने पहले ही कहा था कि वे तीन दिनों के बाद पुन: जीवित हो जाएँगे। तीन दिवसों के बाद वे अपने ग्यारह शिष्यों को दर्शन देते हैं और उन्हें पूरे विश्व में धर्मप्रचार करने का आदेश देते हैं।

ईसा मसीह के ज्ञानपूर्ण उपदेश को शैलोपदेश (Sermon on the Mount) कहा जाता है। ईसा कहते हैं, "धन्य हैं वे जिनका हृदय पवित्र है, क्योंकि उन्हें ईश्वर का दर्शन होगा।" स्वामी विवेकानन्द ईसा के इस उपदेश को उद्धृत कर कहते हैं, "इस एक वाक्य में सर्वधर्मों का सार है। यदि यह उपदेश आपके जीवन में चरितार्थ हुआ है, तो भूत-भविष्य में जो कुछ भी जानने योग्य है, आपने जान लिया है, क्योंकि इसी एक वाक्य में समस्त ज्ञान निहित है। यदि विश्व के सारे धर्मग्रन्थ लुप्त भी हो जाएँ, तो यह एक वाक्य ही विश्व की रक्षा कर सकेगा।" ○○○

शिलाँग का चमत्कार

स्वामी भास्करानन्द

अनुवाद : रमेश देशपांडे, नागपुर

लगभग तीस साल पूर्व मैं रामकृष्ण संघ के मुख्य कार्यालय बेलूड़ मठ में सेवारत था। एक दिन प्रात: करीब चालीस वर्ष की उम्र के एक अनजान व्यक्ति मुझसे मिलने आये। उन्होंने मुझसे पूछा, ''क्या आपने माँ सारदादेवी के शिलाँगवासी श्रीपंचानन ब्रह्मचारी नामक शिष्य के बारे में कभी सुना है?'' मैने कहाँ, हाँ, मुझे संघ के एक वरिष्ठ साधु ने कई साल पहले बताया था कि शिलाँग में पंचानन ब्रह्मचारी को कुछ अद्भुत अनुभव हुआ था, पर मुझे वह घटना अभी ठीक से याद नहीं है। मेरी बात सुनकर वे भावुक हो अश्रुपूर्ण नयनों से नम्रतापूर्वक कहने लगे – ''मैं उस पंचानन ब्रह्मचारी का अभागा पुत्र हूँ। मेरे पिता अच्छे भक्त और सन्त थे।'' मैंने उनसे कहा, ''आप अपने पिताजी के साथ घटी चमत्कारिक घटना को मुझे बताने की कृपा करें। उन सज्जन ने मुझे वह घटना इस प्रकार बताई –

यह घटना १९१२ ई. की है। तब माँ सारदा देवी जीवित थीं और बंगाल में निवास कर रही थी। मेरे पिताजी शिलाँग में शिक्षक थे। तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने असम की राजधानी कुछ दिनों के लिए शिलाँग से ढाका स्थानान्तरित की थी। इससे शिलाँग शहर उजड़-सा गया था। शहर में बहुत से मकान खाली पड़े थे। मेरे पिताजी के पड़ोस में करीब अस्सी मकान थे, जिनमें मात्र तीन घरों में लोग रहते थे, बाकी सारे मकान खाली पड़े थे। इस स्थिति का लाभ उठाकर स्थानीय आदिवासी लड़के शहर के खाली मकानों को तोड़फोड़ रहे थे। कई घरों में तो आग भी लगा देते थे। उन दिनों मेरे पिताजी अपने मकान में न रहकर शहर के सम्पन्न एवं सम्मानित व्यक्ति श्री रायबहादुर भूपाल चन्द्र बसु के बड़े मकान में रहते थे, जो सपरिवार छुट्टियाँ मनाने कलकत्ता गए थे। घरों के तोड़फोड़ की घटनाओं को देखते हुए बसु महाशय ने मेरे पिताजी को वहीं रहकर उनके आने तक घर की रक्षा करने को कहा था। एक दिन पिताजी ने अपने घर में कुछ कार्य हेतु तीन नेपाली मजदूरों को रखा था। जब वे घर का काम देखने आए, तो उन्होंने देखा कि हमारे घर से तीसरा मकान जल रहा था। वह बिजनेय की रानी का घर था। शहर के अन्य मकानों की तरह वह भी खाली पड़ा था। इसमें छोटे-बड़े दो आवासीय भवन थे। छोटा भवन आग से पूरा घिर गया था। उन दिनों नल का पानी निश्चित समय में ही आता था। जब नल में पानी नहीं था, तभी आग लगी थी। पिताजी पानीभरी बालटियाँ दोनों मजदूरों के हाथ में देकर स्वयं बड़े भवन के घास की छत पर चढ़ गये और पानी की बालटियाँ ऊपर देने के लिये मजदूरों से कहा। ऊपर आते-आते बालटियों का पानी बहकर बहुत कम बच गया। तब तक छोटे भवन की आग बड़े भवन की छत तक पहुँच गयी। पिताजी को बीस फीट उँची आग की लपटों नें घेर लिया। उन्हें मृत्यु समीप दिखने लगी। वे सम्पूर्ण हृदय से अपनी गुरु श्रीमाँ सारदा देवी से प्रार्थना करने लगे।

तभी उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। माँ सारदा देवी उनके सामने प्रकट हुईं। वे आकाश से उड़ती हुई आईं, उनका शरीर बिजली के समान दीप्तिमान था। उनकी आखों में दैवी करुणा झलक रही थी। बाहें उठाकर उन्होंने पिताजी से कहा, ''डरो मत बेटा! अब मैं आ गयी हूँ!'' अपनी बाहों को लहराकर उन्होंने तत्काल ज्वालाओं के ताप का शमन कर दिया, तब मेरे पिताजी को अग्नि के ताप का थोड़ा भी अनुभव नही हुआ। इसके बाद तीन घंटे तक मेरे पिताजी बेहोश रहे। होश में आने पर उन्होंने देखा कि छोटा भवन पूरा जल कर राख हो चुका था, किन्तु बड़े भवन की आग से कोई क्षति नहीं हुई, आग से छत का एक तिनका भी नहीं जला था! जब वे छत पर उठकर बैठे, तब नेपाली मजदूरों ने आश्चर्यचकित हो कहा, ''महोदय, क्या आप अभी भी जीवित हैं? हमने आपको आग की लपटों में 'माँ माँ' कहते हुए सुना और उसके बाद आपकी आवाज बन्द हो गई। तब हमें लगा की शायद आपको आग ने निगल लिया है।'' उसके बाद मजदूरों की मदद से पिताजी छत से नीचे उतरे। उन्होंने देखा कि पिताजी के मात्र चेहरे पर जलने के निशान तथा फोड़े थे। आश्चर्य की बात थी कि शरीर का अन्य कोई भी भाग नहीं जला था! चेहरे की चमड़ी शुरु में लाल हुई, बाद में धीरे-धीरे काली होती गयी। कुछ दिनों बाद उनका चेहरा इतना काला हो गया कि उनको नित्य देखनेवाले और १९-२० वर्षो से पहचानने वाले भी उन्हें पहचान न सके। पिताजी के एक डॉक्टर मित्र ने कहा कि जली हुई चमड़ी निकल जाने के बाद आनेवाली चमड़ी कोढ़ जैसी खराब दिखेगी। यह सुनकर पिताजी को थोड़ा दुख हुआ।

एक दिन प्रात: करीब तीन बजे उन्हें फिर से माँ सारदा देवी के दर्शन हुए। वे बोलीं, ''बेटा तुम जले हुये चेहरे से

दुखी हो। तुम एक बार कहो कि तुम स्वस्थ होना चाहते हो? तब मैं तुम्हारा चेहरा ठीक कर दूँगी?

पिताजी ने कहा, ''माँ, मैं आपसे यह नहीं कह सकता। मैं अपना बाह्य सौंदर्य लेकर क्या करुँगा? यदि मुझे आपसे कोई वरदान चाहिए, तो बहुत-सी अच्छी चीजें माँगने के लिये हैं।'' तब माँ ने दैवी मुस्कान से करुणामयी दृष्टि से पिताजी से कहा, ''बेटा, मुझसे नहीं कहते, फिर भी मैं कहती हूँ, बंगला वर्ष के अन्तिम दिन पास की झील में स्नान करने के बाद तुम्हारा चेहरा पूरा ठीक हो जायेगा।'' यह कहकर श्रीमाँ अन्तर्धान हो गयीं।

उन दिनों एक सज्जन पिताजी के साथ एक ही कमरे में रहते थे। एक दिन उन्होंने मेरे पिताजी से कहा, ''दिन-पर-दिन आपका चेहरा भयानक होता दीख रहा है, आप इसकी कुछ चिकित्सा क्यों नही करते?'' मेरे पिता ने उन सज्जन को श्रीमाँ के दूसरे दर्शन की बात बतायी। एक-दूसरे के द्वारा यह घटना अन्य लोगों को ज्ञात हो गयी। सबने अविश्वास किया। उनमें एक ब्राह्म समाज के वरिष्ठ सदस्य थे। यह बात मेरे पिता को पता चल गयी। जैसे-जैसे बंगाली वर्ष का अंतिम दिन पास आने लगा, मेरे पिताजी सोचने लगे, यदि श्रीमाँ द्वारा कथित चमत्कार नहीं हुआ, तो लोग बहुत उपहास करेंगे। मेरा उपहास तो ठीक है, पर श्रीमाँ का उपहास न हो, यह सोचकर वे दुखित रहने लगे। अत: उन्होंने झील में स्नान नहीं करने का निर्णय लिया।

बंगाली वर्ष के अन्तिम दिन वे न चाहते हुए भी, एक दैवी शक्ति से खिचें हुए उस झील तक गये और उसमें स्नान कर शीघ्र घर लौट आये। इस दौरान उनके परिचित दो सज्जन उनके घर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें उत्सुकता थी कि श्रीमाँ की भविष्यवाणी पूर्ण हुई कि नहीं। जैसे ही उन्होंने पिताजी के चेहरे को देखा, तो उनके चेहरे पर जलने का कोई भी चिह्न न पाकर वे दोनों आश्चर्यचकित हो गये। यह चमत्कार मेरे पिताजी के साथ हुआ था।''

पंचानन ब्रह्मचारीजी के पुत्र ने अश्रुपूर्ण आखों से आगे कहा, ''शिलाँग नगर में हुए इस चमत्कार को रामकृष्ण भावधारा के संन्यासियों ने गहराई से जाँच के बाद सही पाया। बाद में यह घटना रामकृष्ण-भावधारा की प्रसिद्ध बंगाली पत्रिका 'उद्बोधन' में १९३९ ई. में प्रकाशित हुई।''

('ग्लोबल वेदान्त' १९९९, शारदीय अंक से साभार)

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

३०१. अन्याय का करो सदा प्रतिकार

बाजीराव पेशवा घोड़े पर सवार हो सैनिकों के साथ खानदेश के अभियान पर निकले थे। 'होल' ग्राम में एक बारह वर्षीय बालक ने उन पर एक पत्थर फेंका, जो उनके सिर पर लगा और वहाँ से रक्त की धारा बहने लगी। सिपाही बालक को पकड़कर बाजीराव के पास ले आए। तब उन्होंने बालक से पूछा, ''मैंने तो तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ा न था। फिर तुमने मुझ पर पत्थर क्यों फेंका?'' प्रश्न सुनते ही बालक की भृकुटी तन गई, ओठ फड़फड़ाने लगे और चेहरा तमतमा उठा। निर्भयता पूर्वक उसने कड़े शब्दों में कहा, ''किसी भी राजा में तीन बातों का होना जरूरी है – सुशासन, प्रजा का सुख और उस पर अत्याचार न होने देना।'' ''किन्तु मैं तो इन तीनों का ठीक पालन करता हूँ'', पेशवा ने बीच में ही रोककर कहा, तो बालक बोला, ''अभी-अभी आपके कुछ सैनिक खेतों की फसल को रौंदते हुए मेरे खेत में घुस आए और वहाँ उगा हुआ चना तोड़कर घोड़ों को खिलाया। मैंने आप पर पत्थर फेंककर इसका बदला लिया।'

बालक की तेजस्विता, निर्भयता और प्रतिशोध लेने की उत्कटता को देख बाजीराव पेशवा स्तब्ध रह गए। वे उससे बोले, ''तुम्हारे साथ सचमुच अन्याय हुआ है, जिसके लिए मैं दुखी हूँ। मैं उन सैनिकों को अवश्य सजा दूँगा और तुम्हारी नष्ट हुई फसल का मुआवजा भी दूँगा।'' इतने में खेत से दौड़ती हुई बालक की माँ और उसके मामा वहाँ आ पहुँचे। वे भयभीत थे और उनसे कुछ बोलते नहीं बन पड़ रहा था। हाथ जोड़कर वे दोनों चुपचाप खड़े रहे। तब बाजीराव ने कहा, ''माँ! बाजीराव पेशवा तुम्हारे सामने नतमस्तक हैं। तुम्हारा यह पुत्र असाधारण है। इसमें देशप्रेम और शौर्य कूट-कूटकर भरा हुआ है। तुम यदि इसे मुझे दे दो, तो मैं इसके पालन-पोषण का दायित्व लूँगा। तुम्हारे निर्वाह का भी सारा खर्च वहन करूँगा।'' फिर बालक से कहा, ''तुम्हारा और मेरा एक ही लक्ष्य है – अन्याय का प्रतिकार करना। तुम एक वीर मराठा हो। मराठों की रक्षा करने के लिए मैं तुम्हें घुड़सवारी और अस्त्र-शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण दूँगा। तुम निश्चय ही देश का उत्थान करोगे।'' बाजीराव के ये शब्द सत्य सिद्ध हुए। यही बालक आगे चलकर 'मल्हारराव होलकर' नाम से ख्यात हुआ और उसने इन्दौर रियासत की बागडोर सुचारु रूप से सम्हाली।

बच्चों में स्वाभिमान और वीरता के बीज बचपन में ही प्रस्फुटित होते हैं। अन्याय और अत्याचार को वे बर्दाश्त नहीं करते। अदम्य साहस, उत्कट इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति महान से महान चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होते हैं और भविष्य में अपना और देश का नाम अमर करते हैं। ○○○

गीतातत्त्व चिन्तन (८/४)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय का 'विवेक ज्योति' के १९९१ के मार्च अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है)

आकाशवाणी ने कहा, तुम्हारी क्या इच्छा है? मनु ने कहा कि मैं आपको आँखें भरकर देखना चाहता हूँ। आकाशवाणी ने कहा कि मेरे तो कोई रूप नहीं है, मनु। भक्त मेरे सामने लाकर साँचा देता है और मैं उस साँचे में अपने को ढालकर आता हूँ। तुम जिस रूप में मुझे देखना चाहते हो, वह साँचा तुम मुझे दे दो। मनु महाराज बड़े चतुर हैं। उन्होंने साँचा दे दिया। उन्होंने कहा–

जो सरूप बस सिव मन माहीं।
जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुसुंडि मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रशंसा।।
देखहि हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारत मोचन।।

ठीक है प्रभु, आप साँचा देने के लिए कहते हैं, तो यह साँचा दे रहा हूँ। क्या साँचा दिया? कहा कि **जो सरूप बस सिव मन माहीं** – आपका जो स्वरूप भगवान शिव के मन में है, जिसका वे ध्यान करते हैं और आपका जो रूप काकभुसुंडिजी के मन मानस का हंस है, तो प्रभु, हम आपके उसी रूप को नेत्र भरकर के देखना चाहते हैं । चतुराई क्या है मनु महाराज की? मनु महाराज ने भगवान से कहा कि आपका जो निर्गुण रूप भगवान शिव के ध्यान का विषय है और आपका जो सगुण रूप काकभुसुंडि के मन मानस का हंस है, महाराज हम भी आपको वैसा ही देखना चाहते हैं। तो भगवान सामने रूप लेकर आ गये। हम पढ़ते हैं, वह रूप कैसा था?

नीलसरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।

वहाँ पर तीन उपमाएँ गोस्वामीजी ने दे दीं। नीलसरोरुह- नीलकमल के समान। नीलमनि - मणि जैसा नीला होता है, नीले मणि के समान और नील नीरधर स्याम, जैसे मेघ नीले रंग का होता है, वह रूप लेकर आए हैं। यह अद्भुत नीलारंग है। आकाश नीला दिखाई देता है, समुद्र का जल नीला दिखाई देता है। क्या समुद्र का जल नीला होता है? आप उसे हाथ में उठाकर देखें, तो उसका कोई रंग नहीं होता। आकाश नीला दिखाई देता है। क्या उसका रंग नीला है? नहीं है नीला। दूर से देखने से नीला दिखाई देता है। श्रीरामकृष्ण देव से किसी ने पूछा, तो उन्होंने भगवान के रूप की तुलना नीलवर्ण से की थी। आकाश का रंग नीला दिखाई देता है। कब? जब हम उसे दूर से देखते हैं। आकाश सर्वत्र व्याप्त है, उसका तो कोई रूप दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार जब तक हम प्रभु को दूर से देखते हैं, तभी तक वे नील वर्ण के हैं, और जब अपने भीतर, अपने ही सन्निकट उनके दर्शन करते हैं, तो उनके कोई रूप नहीं हैं। पर यहाँ पर गोस्वामीजी जो तत्त्व देना चाहते हैं, वह यह कि पहले आकाशवाणी होती है। फिर रूप प्रकट होता है। अर्थात् शब्द के बाद जो शब्दी है अथवा शब्द का आधार है, वह मानो अपना रूप प्रकट करता है। तो शब्द पहले और रूप बाद में। इसी प्रक्रिया को ध्वनित करने के लिए, गोस्वामीजी यहाँ यह प्रसंग रखते हैं। यदि हम दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में देखें और वेदान्त के ग्रन्थों का अनुशीलन करें, तो हम पाएँगे कि पहले वह ब्रह्म, वह सत्य अपने को शब्द के रूप में प्रकट करता है। तो कौन-सा शब्द उसके नाम के लायक हो सकता है ? वह शब्द है – ॐ। यह ॐ ही अक्षर ब्रह्म को प्रकट करता है। पर इस श्लोक में परम अक्षर ब्रह्म का तात्पर्य ॐ से नहीं है। यहाँ पर अक्षर कहकर जीवोपाधिरहित परब्रह्म को दर्शाया गया है। परम शब्द का अर्थ शंकराचार्य ने निरतिशयं किया है। यह निरतिशय शब्द केवल ब्रह्म के लिए ही प्रयुक्त हो सकता है। ब्रह्म के सिवा सब कुछ ससीम है। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं – **''एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्यचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः, एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत... एतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति''** – इस अक्षर के प्रशासन में हे गार्गि! सूर्य-चन्द्र यथास्थान मर्यादा में स्थित हैं, इसके ही प्रशासन में द्युलोक और भूलोक अपने-अपने

स्थानों में अवस्थित हैं, ब्रह्मज्ञ लोग इस अक्षर के विषय में चर्चा करते रहते हैं। इस तरह परम ब्रह्म कहकर सापेक्ष ब्रह्म से अलग दर्शाया है।

भगवान फिर कहते हैं - स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते - स्वभाव अध्यात्म कहलाता है। अध्यात्म का क्या अर्थ है? अध्यात्म का अर्थ होता है ब्रह्म का स्वभाव। ब्रह्म परम होकर भी वह भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। इतने जो जीव-जगत् के रूप दिखाई देते हैं, उन सबमें वही समाया हुआ है। तो ब्रह्म कैसे जीव के रूप में दिखाई देता है, उसको अध्यात्म कहते हैं। वही एक सत्य अनन्त रूपों में दिखाई दे रहा है। इसका रहस्य जो जान ले कि कैसे वह सत्य अनन्त रूपों में दिखता है, उसी सत्य को अध्यात्म कहते हैं। अधियाग माने भीतर गया हुआ है। वह ब्रह्म हमारे भीतर गया है। जो ब्रह्म समस्त विश्व में फैला हुआ है। वह सारा का सारा फैलाव है, वह हमारे भीतर कैसे घुस आया? वह चैतन्य कैसे हमारे भीतर स्पन्दित है? इसको कहते हैं अध्यात्म। तो हे अर्जुन, तुम इस रहस्य को भी जान लोगे, जो ब्रह्म अनन्त होकर, परम होकर, सभी जीवों के भीतर कैसे घुस गया है, आत्मा के रूप में कैसे अपने को प्रकट कर रहा है? यह ब्रह्म का स्वभाव है, यही अध्यात्म कहलाता है। तुम इस अध्यात्म को जान लोगे। इस संसार के रहस्य को जान लोगे। जीव जगत् के नानात्व, इसकी बहुलता को भी जान लोगे। यह अध्यात्म कहलाता है। शंकराचार्य स्वभाव और अध्यात्म के बारे में कहते हैं, "**तस्य एव परस्य ब्रह्मणः प्रतिदेहं प्रत्यगात्मभावः स्वभावः । स्वभावः अध्यात्मम् उच्यते। आत्मानं देहम् अधिकृत्य प्रत्यगात्मतया प्रवृत्तम्...**" - उस परब्रह्म की देह रूप आत्मा को आश्रय करके प्रत्यागात्मा या जीव के रूप में प्रवृत्त होना ही स्वभाव है, उसे ही अध्यात्म कहते हैं। अब कर्म के बारे में कहते हैं - "भूतभावोद्भवकरो विसर्ग: कर्म: संज्ञित: - भूतों का जिससे भाव (उत्पत्ति) और उद्भव (वृद्धि) होता है, इस प्रकार विसर्ग को (देवताओं के उद्देश्य से त्याग रूप यज्ञ को) कर्म कहा जाता है। जिस त्याग-यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण प्राणी समुदाय उत्पन्न होते हैं, उसी को यहाँ विसर्ग कहा गया है। जैसे तीसरे अध्याय में यज्ञ की बात आती है। वहाँ कहा गया है - **अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।** यज्ञ करने से क्या होता है? वर्षा होती है, फिर जल से अन्न उत्पन्न होता है, अन्न से क्या होता है? अन्न प्राणियों को पुष्ट करता है। यह यज्ञ है त्याग का प्रतीक। यज्ञ करते समय हम देवता के निमित्त त्याग करते हैं। जैसे मैं तपस्या करता हूँ। तो तपस्या करने से मैं क्या करता हूँ? मैं अपने अहंकार का त्याग करता हूँ। इस त्याग के द्वारा ही यह संसार चलता है। यह त्याग न हो, तो परिवार नहीं चल पाता। इसमें रहकर माता-पिता को अपने बच्चों हेतु निज के सुख का कितना त्याग करना पड़ता है। बाहर जो परिवार टूटते दिखते हैं, उसका प्रधान कारण होता है इस त्याग का अभाव। केवल अपने स्वार्थ के लिए, अपने सुख के लिए जब माता-पिता चेष्टा करते हैं, तो वह परिवार फिर टिक नहीं पाता, टूट जाता है। आप ये देखेंगे कि परिवार को बनाए रखने के लिए हम कितना त्याग करते हैं। उसी प्रकार संस्था कब तक टिकती है? जब तक उसके प्रत्येक सदस्य के मन में त्याग का भाव प्रबल रहता है, तब तक संस्था बहुत सुन्दर काम करती है। परन्तु संस्था के सदस्य जब अपने-अपने लाभ के लिए काम करते हैं, तब संस्था चल ही नहीं सकती। किसी भी क्षेत्र में आप देखेंगे कि त्याग ही संसार को प्रेरित करने का कारण है। ईश्वर भी त्याग करते हैं। ईश्वर ने किस प्रकार त्याग किया? **स तपोऽतप्यत** – उसने तप किया। जैसा हमने पहले देखा था, गोस्वामी तुलसीदासजी ने ईश्वर के अवतार की बात कही थी। ईश्वर अवतरित होते हैं। संस्कृत में एक शब्द है, अवतरणिका, जिसका अर्थ होता है सीढ़ी। सीढ़ी का उपयोग हम सब करते हैं? जब हमें नीचे-ऊपर जाना होता है, तब सीढ़ी लगा देते हैं। इस प्रसंग में तुलसीदासजी भगवान को पुकारकर कहते हैं कि प्रभो, हम तुम्हें पाना चाहते हैं, तुम्हारे पास आना चाहते हैं। ईश्वर ने कहा कि यदि आना ही चाहते हो, तो आ जाओ। साधना की सीढ़ी के सहारे चढ़कर चले आओ। गोस्वामीजी का उत्तर था कि महाराज, आप साधना की सीढ़ी दिखला रहे हैं। हम नीचे कोटि-कोटि लोग रहते हैं। हम सब आपसे मिलना चाहते हैं और आप कहते हैं कि साधना की सीढ़ी लगी है, जिससे तुम चले आओ। गोस्वामीजी ने प्रभु के सामने एक प्रश्न रखा कि प्रभु हम सब यदि आप तक इस एक साधना की सीढ़ी के द्वारा आना चाहें, तो कितना समय लगेगा? ईश्वर इसका उत्तर नहीं दे पाए। चुप हो गये। उत्तर है ही नहीं। यदि यह कहते हैं कि एक करोड़ साल लगेंगे। इसका मतलब कि एक करोड़ साल में सभी भगवान के पास पहुँच ही जाएँगे। भगवान अब तुलसीदासजी के प्रश्न में बँध गये। प्रभु ने कहा कि तुलसी तुम्हारा प्रश्न बड़ा जटिल है। इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। तुलसीदासजी ने तब कहा कि यदि मेरे सुझाव के अनुसार आप करेंगे, तो इस समस्या का समाधान हो जाएगा। प्रभु ने कहा कि यदि तुम्हारा सुझाव पट जाएगा, तो अवश्य ही मान लूँगा। **(क्रमशः)**

मुक्ति क्या है?

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

एक सजग और विवेकशील व्यक्ति के मन में यह प्रश्न बार-बार उठता है कि मुक्ति क्या है? हममें से अनेकों का जन्म यथार्थ स्वाधीनता, अपनी मुक्ति प्राप्त करने के संघर्ष के लिए हुआ है । सभी व्यक्ति कुछ-न-कुछ संघर्ष करने के लिए ही इस मनुष्य-लोक में आते हैं । इससे अधिक कोई भयावह कल्पना नहीं होगी कि कोई व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों के वशीभूत होकर अपना संघर्ष करने का उत्साह खो बैठे तथा इच्छा और प्रयत्न करने के अपने नैसर्गिक मानवाधिकार से भी वंचित हो जाए। आजीवन कारावास का दण्ड भोग रहे निराश व्यक्ति के बारे में ऐसा सोचा जा सकता है, क्योंकि वह अपने सारे कार्यों को सामाजिक अथवा शारीरिक क्षमता से सम्बन्धित देखता है और जिनका कभी भी ह्रास हो सकता है। सम्पत्ति अथवा प्रतिष्ठा रूपी भी एक कारा होती है, जैसे कि, राजवंश में जन्मा एक अच्छा व्यक्ति भोगों में भले ही लिप्त न हो, किन्तु मन्द बुद्धि के कारण आत्म-विकास का मार्ग प्राप्त नहीं कर पाता है। इसका अर्थ यह है कि जो व्यक्ति संघर्ष नहीं करता, वह भविष्य में जड़-बुद्धि बन जाता है और यह निश्चित है। हमारी सम्पूर्ण सजीवता, हमारा सम्पूर्ण ज्ञान संघर्ष से ही विकसित होता है। इसके अभाव में हम शक्तिहीन अयोग्य व्यक्ति के रूप में परिणत हो जाते हैं।

ऐसा कहा गया है कि एक महान और सामान्य व्यक्ति में भेद इतना ही है कि वे मुक्ति अथवा स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करते हैं या नहीं। ऐसा कहना ठीक हो सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस वस्तु को हम बुद्धि के द्वारा ग्रहण भी नहीं कर सकते उसे संघर्ष के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। हममें से अधिकांश लोग अमुक-अमुक विषय में स्वाधीनता प्राप्त कर धीरे-धीरे न्यूनाधिक प्रमाण में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करते हैं। कुछ लोग अधिकार के नाम पर संघर्ष करते हैं। 'ईश्वर और मेरा अधिकार' (God and my Right) – यह ध्येय-वाक्य अमुक आंदोलन करने वालों के बारे में है। वस्तु प्राप्त करने के हमारे संघर्ष के पीछे हमारी यथार्थ इच्छा मुक्ति की ही है और केवल हिन्दु धर्म ही यह कह सकता है। यह मुक्ति आत्मविकास की आवश्यक शर्त है। हमारा धर्म कहता है कि जो व्यक्ति अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित है, वही मुक्त है। जो व्यक्ति अपने आप में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित है, वह सभी बन्धनों से सभी प्रकार से मुक्त है।

स्वाधीनता अथवा मुक्ति का वैशिष्ट्य यह है कि यह किसी-न-किसी का विरोध करने पर प्राप्त होती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना संघर्ष, चाहे वह सामान्य हो अथवा दुष्कर, आत्म-प्रेरणा से तथा आसपास के लोगों का विरोध करके दृढ़ रखना होता है। वीर पुरुष को चाहिए कि वह सामाजिक परिवेश के दबाव से अपने को स्वाधीन रखे। एक वीर पुरुष समाज के हित को देखते हुए अपने कार्य का चयन कर सकता है। किन्तु उसे यह विश्वास होना चाहिए कि यह कार्य वह अपनी इच्छा से कर रहा है, न कि समाज द्वारा बाध्य होकर। वैसे भी साहसी लोगों को इस विषय में कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे अपनी स्वाधीनता और उसकी रक्षा हेतु निश्चिन्त रहते हैं। उन्हें किसी भी आक्रमण का भय नहीं होता। एक अबोध बालक से यदि कोई वस्तु माँगी जाए, तो उसे अस्वीकार करना वह अपना अधिकार समझता है, क्योंकि मना करने की अपनी स्वाधीनता वह खोना नहीं चाहता। इस प्रकार के व्यक्ति में अभिमान, स्वार्थ, स्वयं का ही चिन्तन तथा दूसरों की आवश्यकताओं की उपेक्षा जैसे दुर्गुण देखने को मिलते हैं। वे उच्च और कठिन कार्य नहीं कर सकते। यथार्थ महान लोग जन्म से ही अपनी स्वाधीनता के बारे में इतने दृढ़ होते हैं कि वे कुछ भी देने के लिये सदैव प्रस्तुत रहते हैं। सेवा के प्रत्येक अवसर का वे हृदयपूर्वक स्वागत करते हैं। ऐसे लोग हमें प्रतिदिन देखने को मिलते हैं। मनुष्यों में निस्स्वार्थता कोई दुर्लभ वस्तु नहीं है। प्रत्युत यह भवन की ईंटों को जोड़ने वाला तत्त्व है।

समाज उन शक्तियों में से एक है, जिसके विरुद्ध व्यक्ति को अपनी स्वाधीनता प्राप्त करनी है और यह उसे बलपूर्वक प्राप्त करनी होगी। किन्तु पुन: यह प्रश्न उठता है कि मुक्ति अथवा स्वाधीनता ऐसी क्या वस्तु है, जिसके लिए व्यक्ति संघर्ष करता है। यहाँ पर एक सबसे बड़ी भ्रान्त धारणा उत्पन्न होती है। कुछ लोगों के अनुसार स्वाधीनता का अर्थ अपनी इन्द्रियों का दास बने रहने में है। यही वह स्वाधीनता है, जो शराबी, जिह्वा-लम्पट और व्यभिचारी व्यक्तियों को उत्पन्न करती है।

शुरुआत में हमारे सारे कार्य और क्षमताओं के पीछे कामना अथवा इच्छा होती है। किन्तु बाद में यह एक व्याधि के समान हो जाती है, जिससे हमें अवश्य मुक्त होना होता है। क्या यह सत्य नहीं है? वासनाओं का आवेग हमें अपनी इच्छा-तरंगों के सामने झुक जाने को बाध्य करता है। यह स्वाधीनता नहीं है। यह तो बन्धन का अन्तिम और सूक्ष्मतम रूप है। यह अधिक भयानक एवं घातक है। क्योंकि इसे

शेष भाग पृ. ५९२ पर

कान्हा और फल बेचने वाली

भगवान श्रीकृष्ण के अनेक नाम हैं – वासुदेव, गोविन्द, पार्थसारथि, माधव, द्वारिकाधीश और बच्चों के लिए बाल-गोपाल। उसमें भी यशोदा मैया, नन्दबाबा और व्रज के गोप-गोपी उन्हें बचपन में कान्हा, कन्हैया अथवा कनूँ कहके पुकारते होंगे।

गोकुल में कान्हा के जन्म होने के बाद मानो आनन्द का हाट लग गया था। सबका मन छोटे-से श्याम रंग के नन्दकिशोर में लगा हुआ था। व्रज के गोप-गोपी का तो पूरा समय गायों को चराने, उनकी देखभाल करने, दधि-माखन तैयार करने, इन सब कार्यों में जाता था। किन्तु उनका मन बहुत ही सरल और पवित्र था। वे हमेशा आनन्द में रहते थे। इसलिए तो भगवान ने इन लोगों को अपना सखा बनाया और इनके बीच अपनी मधुर बाल-लीला की।

देवतागण भी कन्हैया की किलकारियाँ देखने के लिए व्रज में आते थे। माँ यशोदा का यह लाड़ला मनुष्य, देवताओं आदि का तो नयनतारा था ही, किन्तु बन्दर, बिल्ली, कौए, मयूर आदि भी उसके साथ खेलते थे। गाय और उसके बछड़े तो मानो उसके जीवनसंगी हों। कान्हा किसी व्यक्ति का बाहरी वेश न देखकर उसका हृदय देखता था।

एक फल बेचनेवाली बूढ़ी माँ थी। वह बेचारी जंगल के कँटीले रास्तों में जाकर पेड़ से फल तोड़कर गाँव में बेचती थी। जिस दिन फल बिक जाता, तो कुछ दिन उसका गुजारा चल जाता। अच्छे फलों के लिए उसे जंगल-जंगल भटकना पड़ता था। किसी ने उससे कहा कि वह गोकुल जाकर फल बेच आए। वहाँ कान्हा के बाबा नन्द के पास जाएगी, तो उसे कुछ-न-कुछ तो मिल ही जाएगा।

गोकुल फल बेचने के लिए आज वह पहली बार जा रही थी। अच्छे-पके फल की टोकरी लेकर चलते-चलते थक गयी। सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया था। गोकुल में आकर वह देखती है कि यहाँ तो फलों के बहुत सारे पेड़ हैं। बिचारी निराश हो गई कि यहाँ कौन उसके फल खरीदेगा। फिर भी वह सिर पर फल की टोकरी लिए गोकुल की गलियों में पुकार कर कहती है, 'फल ले लो फल! मीठे-मधुर फल ले लो!'

गोपलोग तो गायों को चराने वन चले गए थे और गोपियाँ घर के काम में मग्न थीं। इस बूढ़ी फल बेचने वाली की तो कोई सुन ही नहीं रहा था। बिचारी निराश हो गई कि इतनी मेहनत करके यहाँ आई और उसके फल नहीं बिके। उसे लगा कि अन्तिम बार नन्द बाबा के घर में जाकर देख लिया जाए। वहाँ वह पुकारती है, 'फल ले लो फल! मीठे-मधुर फल ले लो!'

उस घर से एक मधुर आवाज सुनाई दी, 'फलवाली! ओ फलवाली!' बुढ़िया का तो मानो रोम-रोम खिल गया। उसने देखा कि एक छोटा-सा शिशु उसे भोली आँखों से देख रहा है। फलवाली ने इसके पहले इतना सुन्दर मधुर बोलने वाला शिशु कभी देखा नहीं था। आते ही कान्हा टोकरी में अपने छोटे-छोटे हाथों से फलों को देखने लगा। अपनी तुतलाती भाषा में छोटे-छोटे हाथों को फैलाकर उसने कहा, 'फल दो!' फलवाली को लगा कि इसे फल दे दूँगी, तो यह जल्दी से चला जाएगा।

वह बोली, 'इन फलों का मूल्य नहीं दोगे?'

'मूल्य? मूल्य क्या होता है?' अब यह नन्हा कान्हा मूल्य के बारे में क्या जानेगा। इधर-उधर देखने लगा।

फलवाली कहती है, 'किसी से कुछ लेने के बदले उसे कुछ दिया जाता है। उस वस्तु को मूल्य कहते हैं।'

'तू कैसी फलवाली है? मैया मुझे माखन खिलाती है, दूध पिलाती है। वह तो मुझसे कुछ नहीं लेती।'

'अरे! वह तो तुम्हारी माँ है।' फलवाली यह कहकर सोचने लगी कि कान्हा भी यदि उसे माँ कहकर पुकारे, तो उसका पूरा जीवन धन्य हो जाएगा।

'अच्छा, तू क्या लेगी?' कान्हा के ऐसा पूछने पर फलवाली ने कहा, 'मेरे घर अन्न का एक दाना तक नहीं है, मुझे अन्न ला दे।' फलवाली को अब अन्न नहीं चाहिए था,

शेष भाग पृ. ५९० पर

महाराष्ट्र के शक्ति-उपासना पीठ

जयश्री नातू, पुणे

(गतांक से आगे)

३. श्रीक्षेत्र माहूर की महाकाली

त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद्ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे।।
कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः
महाकालस्य कलनात्त्वम् आद्या कालिका परा।।
(महानिर्वाण तन्त्रम्)

अर्थ – हे शिवे! साक्षात् परब्रह्म परमात्मा की तुम परा प्रकृति हो। हे जगज्जननी! तुम्हीं से सारे जग की उत्पत्ति हुई। सभी प्राणियों को ग्रहण करनेवाले महाकाल हैं, तुम उस महाकाल को ग्रहण करने वाली आद्या कालिका हो।

आदिशक्ति का तीसरा रूप है महाकाली। भगवान शिव की संगिनी महाकाली अत्यंत उग्र रौद्ररूपिणी और तमोगुणी हैं। किन्तु महाकाली ने यह तमोगुण मनुष्य के राक्षसत्व, क्रोध, जड़त्व तथा असत् का नाश करने के लिये धारण किया है। देवत्व का रक्षण यह अपने तमोगुण से करती हैं। सत्त्वगुण को अभय देनेवाला यह तमोगुण है। अत्यन्त संकटकालीन स्थिति में माता महाकाली भक्तों का रक्षण करती हैं, इसीलिए इन्हें तारका कहते हैं। मातुंगी के काया कोष से इनका जन्म होने के कारण ये कृष्णवर्णी हैं। दैत्यों का संहार तथा दुष्ट-दलन करने से इनका रूप भयंकर है।

श्रीक्षेत्र माहूर की रेणुका माता का रूप इस काली माँ का ही है। भगवान श्रीपरशुराम की माता रेणुका थीं। अपने पिता की आज्ञानुसार परशुराम ने अपनी माता का वध किया। ऐसा कहते हैं कि यह घटना यहीं पर हुई थी । इसी क्षेत्र में परशुरामजी ने अपनी माता का अंतिम संस्कार किया।

माहूर क्षेत्र का असली नाम मातापुर है। महाराष्ट्र में मराठावाड़ा के नांदेड़ जिले में माहूर है। यह गाँव २५०० फुट ऊँचाई पर है। सीधे रास्ते से हटकर है। यहाँ कुछ ऐसे पुरातन अवशेष मिले हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि यहाँ पुराण काल में अवश्य बड़ा-सा नगर रहा होगा।

मंदिर – माहूर गाँव के पास ही जो पर्वत है, उस पर माता रेणुका का मन्दिर है। मंदिर तक पहुँचने के लिये १५०० सीढ़ियाँ हैं। मंदिर की वास्तुकला अति प्राचीन है। गर्भगृह में देवीमाता का केवल मुखौटा है। मुखौटा अत्यंत भव्य तथा उग्र है। इस पर बड़ा-सा चाँदी का मुकुट है। मुखौटे का एक आसन है, जिस पर सिंह की आकृति है। इस मंदिर के पास ही दो छोटे मंदिर हैं, जो महालक्ष्मी और महासरस्वती के हैं। दक्षिण की ओर परशुरामजी का मंदिर है।

पर्वत की ओर जानेवाले मार्ग पर संत विष्णुदास मठ है। विष्णुदास माता रेणुका के बहुत बड़े भक्त थे। इस स्थान पर उन्होंने घोर तपस्या की थी। मठ के पास मातृकुंड है। इसे 'मावला' तालाब कहते हैं। जो लोग मातृगया नहीं जा सकते, वे यहाँ आकर अपनी माँ का श्राद्ध करते हैं। इसी परिसर में रेणुका की दहन भूमि है और त्रिकुंड भी है।

माहूर को दत्तसम्प्रदायवादी भी तीर्थ क्षेत्र मानते हैं। १२१९ ई. में मुकुंद भारती नामक महंत ने यहाँ एक दत्तमंदिर बनवाया।

सुप्रसिद्ध दत्तभक्त कवि दासोपंतजी ने इसी स्थान पर दत्त भगवान की आराधना की थी। यहाँ उन्हें श्रीदत्त के दर्शन भी हुए। इसीलिये यहाँ बहुत से दत्तभक्त हर साल आते हैं।

मातापुर की यह 'एकवीरा' रेणुका, 'कालीस्वरूपा, ॐकार की 'म'कार मात्रा की प्रतीक हैं। इस चंडी भगवती से यह प्रार्थना करें कि वे इस जगत में दैत्यवृत्ति के विस्तार और अमंगल का नाश कर सारे विश्व को अभय प्रदन करें।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तम्
अस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते।।
(देवी-माहात्म्य – ४/२३)

सप्तश्रृंग गढ़

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः।।
(देवी-माहात्म्य – ११/४)

– हे देवि! तुम इस विश्व की उत्पत्ति करनेवाली वैष्णवी अनन्त शक्तिस्वरूपिणी हो, विश्व का मूल बीज और संसार की परमा महामाया हो। सकल संसार को माया में सम्मोहित करने वाली हो और प्रसन्न होकर सबको मुक्ति देनेवाली भी तुम्हीं हो।

सप्तशृंग निवासिनी अष्टादशभुजा माता अर्ध मात्रा पीठ है। अर्धमात्रा ऊँकार के बिन्दु का प्रतीक है। अ, ऊ, म के बाद अर्धमात्रा हमें तुरीयावस्था प्राप्त करा देती है। इसीलिए सप्तश्रृंगी माता को मुक्तिदायिनी कहा गया है। ज्ञान-विज्ञान के परे ले जानेवाली चिन्मय, निरंजन अवस्था का अनुभव दिलानेवाली सप्तशृंगी माता हैं।

सप्तश्रृंग गढ़ – महाराष्ट्र में नासिक शहर के उत्तरी ओर २७ मील की दूरी पर चांदवड पर्वतमाला में एक है सप्तशृंग। इसकी सात छोटी चोटियाँ होने से इसे सप्तशृंग कहते हैं। अत: इस पर्वतवासिनी देवी का नाम सप्तशृंगी है।

सप्तशृंग पर्वत की तलहटी वणी गाँव में शुरू होती है। समुद्री स्थान से पर्वत की ऊँचाई लगभग ४५०० फुट है। ३/४ कि.मी. की चढ़ाई है, पहले तो पैदल ही जाते थे। इसकी ३५० सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद गणेश कुंड आता है, जहाँ विश्राम कर ४५० सीढ़ियाँ चढ़कर मंदिर पहुँचते हैं।

मन्दिर के सम्बन्ध में – पर्वत की एक बहुत बड़ी सी गुफा है। उस गुफा की पथरीली दीवार से लगी १० फुट लम्बी अष्टादश भुजा माता की भव्य मूर्ति है। सीढ़ी लगाकर ही पूजा करनी पड़ती है। मूर्ति के सामने न देवालय है न प्राकार है। भक्तों की ऐसी धारणा है कि देवी प्रात: बाला, दोपहर में युवती तथा संध्या काल में वृद्धा के रूप में दिखाई देती हैं ।

देवी की १८ भुजाएँ हैं। प्रत्येक हाथ में एक-एक निम्नलिखित आयुध हैं –

दायीं ओर से – १. अक्षमाला, २. कमल, ३. बाण, ४.खड्ग, ५. वज्र, ६. गदा, ७. चक्र, ८. त्रिशूल, ९. फरसा, १०. शंख, ११. घंटा, १२. पाश, १३. शक्ति, १४. दंड, १५. ढाल, १६. धनुष, १७. पानपात्र, १८. कमंडलु

दैत्यों के वध हेतु ये अठारह आयुध माँ अपनी अठारह हाथों में ली हुई हैं। यह मूर्ति सिन्दूर विलेपित है। इनकी आँखें बड़ी-बड़ी और काली हैं। सुहाग-अलंकार से विभूषित यह मूर्ति अत्यन्त भव्य है।

नित्य-नैमित्तिक कार्यक्रम – नित्य पूजा के अलावा प्रत्येक मंगलवार और शुक्रवार को यहाँ पंचामृत महापूजा होती है। देवी माँ की मूर्ति लम्बी होने के कारण मध्यभाग में एक तख्ती लगायी जाती है। उस पर खड़े होकर पुजारीजी माता की पूजा करते हैं। चैत्र तथा आश्विन की पूर्णिमा को यहाँ मेला लगता है। ये दोनों उत्सव धूमधाम से मनाए जाते हैं। लाखों यात्री दर्शन करने आते हैं। इस गुफा के मध्य भाग में चट्टान की एक दुर्गम और नुकीली चोटी है, जिस पर सामान्य मनुष्य चढ़ नहीं पाता। इस पूर्णिमा को बुरी गाँव के भक्त-पुरुष इस चोटी पर लाखों यात्रियों के सामने चढ़ जाते हैं और माता का झंडा वहाँ रखकर आते हैं।

महाराष्ट्र के संत शिरोमणि श्रीज्ञानेश्वर महाराज की कुलदेवी सप्तशृंगी माता थीं। यहाँ अनगिनत भक्तों ने साधना की है। इस क्षेत्र में प्रवेश करते ही मन को छू जानेवाली पवित्रता ही इसका प्रमाण है।

केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, अपितु सारे भारत में देवी माँ के अनेक क्षेत्र हैं। ईश्वर का रूप समझने में वैसे भी मनुष्य सामान्यत: असमर्थ ही है। हम तो केवल प्रार्थना के अधिकारी हैं। इसलिये श्रीमत् शंकराचार्य के शब्दों में प्रार्थना करते हैं –

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो,
न चाह्वानं ध्यानं तदपि न जाने स्तुतिकथा।
न जाने मुद्रास्ते तदपि न जाने विलपनं।
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्।।

– हे माँ मैं तन्त्र-मन्त्र, स्तुति, आवाहन, ध्यान, मुद्रा, विलेपन कुछ भी नहीं जानता हूँ, केवल यह जानता हूँ कि तेरा स्मरण समस्त क्लेशों का हरण करनेवाला है। जय माँ!

संदर्भ ग्रंथ –

१. भारतीय संस्कृति कोश - पं. महादेव शास्त्री जोशी, २. करवीर निवासिनी श्री महालक्ष्मी - पं.स. देसाई, ३. देवी दर्शन – डॉ. सी.ग. देसाई, ४. सप्तशक्ति – विनोबा भावे, ५. स्तवनांजलि – रामकृष्ण मठ, नागपुर, ६. ओंकार किमया – स.कृ. देवधर, ७. गौडपाद कारिका – १-२३ **(समाप्त)**

भारत की ऋषि परम्परा (१२)

स्वामी सत्यमयानन्द

महर्षि वाल्मीकि

मानव-विज्ञान को प्रत्येक संस्कृति एवं उपसंस्कृति में विभिन्न आश्चर्यजनक कथाएँ प्राप्त हुई हैं। प्रत्येक समाज ने, चाहे वह सभ्य हो अथवा असभ्य, विकास की प्रक्रिया में पौराणिक कथाओं का महत्त्व स्वीकार किया है। ये कोई मनोरंजन के लिए रची हुई मनगढ़न्त कथाएँ नहीं हैं। प्रत्युत ये हमें शिक्षित करती हैं और हमारे समूचे अचेतन को बड़े ही सूक्ष्म किन्तु सकारात्मक रूप से उन्नत करती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो, संस्कृति की समष्टि अचेतावस्था पौराणिक कथाओं को जन्म देती है और वे पुनः संस्कृति को समृद्ध करती हैं।

अतएव, किसी विशेष संस्कृति अथवा समाज में कुछ पौराणिक कथाओं का उद्भव सहज और स्वाभाविक रूप से होता है। किन्तु कभी-कभी कुछ दुर्लभ प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपने समुदाय की मानसिकता को समझते हुए, उनके विकास हेतु अद्भुत प्रभावी कथाओं की रचना करते हैं। लोग इन कथाओं को सुरक्षित रखते हैं और आने वाली पीढ़ियों में इसका प्रचलन करते हैं। यदि यह बात ध्यान में रखी जाए तो रूढ़िवादी लोग एक-दूसरे के धर्म और पौराणिक कथाओं के सत्यापन के विषय में कलह नहीं करेंगे।

हमारे पुराण-शास्त्रों में अद्भुत कथाएँ हैं। हिन्दुओं के दृष्टिकोण को इन कथाओं ने सदा के लिए ईश्वर-सम्बन्धी उच्च और गहन ज्ञान की ओर आकृष्ट किया है। पौराणिक ऋषियों में वाल्मीकिजी महाकाव्य रामायण की रचना करने वाले आदिकवि थे। उन्होंने रामायण की रचना कर, न केवल भारत, अपितु विश्व के असंख्य लोगों को अनेक युगों से प्रेरित किया है।

'जैसे प्रत्येक सन्त का एक अतीत होता है, वैसे ही प्रत्येक पापी के लिए एक आशाजनक भविष्य होता है' – यह लोकोक्ति वाल्मीकिजी के जीवन में चरितार्थ होती है। उनका पूर्व नाम रत्नाकर था। रत्नाकर का जन्म अंगिरा गोत्र में हुआ था। ब्राह्मण कुल में जन्म होने पर भी उसने ब्राह्मणोचित कर्तव्यों का कभी पालन नहीं किया। इसके फलस्वरूप वह युवावस्था में ही असामाजिक तत्त्वों से जुड़ गया। वह एक डाकू बन गया। जंगल के रास्तों में छिपकर वहाँ से जाने वाले यात्रियों और व्यापारियों को लूटकर तथा मारकर वह अपने परिवार का पालन-पोषण करता था।

रत्नाकर एक बलवान युवक था। डाकू के रूप में जैसे-जैसे उसका अनुभव बढ़ता गया, वह उतना ही निडर एवं क्रूर बनता गया। अपने घर में वह एक कर्तव्यपरायण पुत्र था। उसके माता-पिता को यह पता नहीं था कि उनका पुत्र किस प्रकार उनका पालन-पोषण करता है। वर्ष बीतते गए, वह इसी प्रकार दुहरा जीवन यापन कर रहा था। उसका विवाह हुआ और सन्तानें हुईं। परिवार के लोग बढ़ने लगे, तो उनके पालन-पोषण के लिए वह और भी क्रूरता और निडरता से लूटने लगा।

एक दिन शाम को पेड़ की छाया में छिपकर बड़ी आतुरता से वह रास्ता टोह रहा था। उसने दूर से देखा कि एक व्यक्ति धीरे-धीरे निश्चिन्त होकर उसकी ओर आ रहा है। अपनी अनुभवी दृष्टि से उसने देखा कि इस व्यक्ति की चाल-ढाल अन्य साधारण लोगों से पृथक् है, जिनको वह अभी तक लूटता आया है और इससे वह थोड़ा चिन्तित हो गया।

जैसे-जैसे वह व्यक्ति पास आने लगा, रत्नाकर भी चुपचाप उसे पकड़ने के लिए आगे बड़ा। एक विचित्र भयदशा से ग्रस्त होकर वह उस व्यक्ति को पीछे से पकड़ने के लिए झपटा। रत्नाकर उसे धमकाना चाहता था, वह फुफकारते हुए बोला, 'तुम्हारे पास जो कुछ है, उसे नीचे रख दो, अन्यथा मैं तुम्हें मार दूँगा।'

रत्नाकर ने पूरा जीवन अपने द्वारा पीड़ित लोगों के चेहरों पर भय देखा था, किन्तु यह व्यक्ति थोड़ा भी विचलित नहीं हुआ। उसके मुख पर तो करुणापूर्वक स्मित हास्य था। रत्नाकर ने उसे अच्छी तरह जाँचकर देखा कि उसके पास वीणा-यन्त्र और कमण्डलु के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह व्यक्ति साधु था।

वे साधु और कोई नहीं, देवर्षि नारद ही थे। उनके शब्दों में भय और घृणा का भाव बिल्कुल भी नहीं था, वे बोले, 'तुम मुझे क्यों लूटना चाहते हो? इस तरह लोगों को लूट-मारकर क्यों पाप को अपने सिर पर लेना चाहते हो?'

रत्नाकर घबरा गया और अस्फुट शब्दों में बोला, 'क्यों, मैं लूटे हुए धन से अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण करता हूँ?'

नारदजी ने रत्नाकर की आँखों में गहराई से देखा। उसे लगने लगा मानो उसके पैरों से धरती खिसक रही हो। नारदजी ने पूछा, 'क्या तुम्हें लगता है कि तुम्हारा परिवार तुम्हारे पाप में सहभागी होगा?'

रत्नाकर दृष्टि हटाकर अस्पष्ट शब्दों में बोला, 'हाँ, वे भी
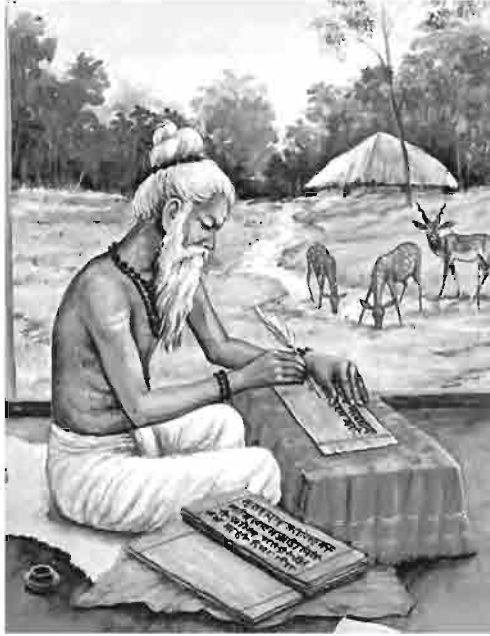
मेरे पाप के भागी होंगे?'

नारद जी ने उसे घर जाकर अपने परिवारजनों से पूछने के लिए कहा। उन्होंने रत्नाकर को वचन दिया कि वे उसके लौटने तक यहीं प्रतीक्षा करेंगे। किन्तु रत्नाकर का मन दुष्ट कार्य का अभ्यस्त हो गया था। उसने एक और भूल की। उसने नारदजी को पेड़ से बाँध दिया, ताकि वे भाग न जाएँ।

रत्नाकर तेजी से घर की ओर भागा। उसका शरीर भय और तनाव से काँप रहा था। वह अपने पिता के पास गया और आवेशपूर्वक पूछा, 'पिताजी, क्या आप जानते हैं कि मैं किस प्रकार आपका भरण-पोषण करता हूँ?'

उसके पिता ने घबराकर उसकी ओर देखा और बोला, 'नहीं, मैं नहीं जानता।'

रत्नाकर साहसपूर्वक बोला, 'मैं लुटेरा हूँ। जो लोग मेरा विरोध करते हैं, मैं उन्हें मार देता हूँ।'

उसके पिता भयभीत हो गए और चिल्लाते हुए बोले, 'क्या! तुम लुटेरे हो? चाण्डाल, चले जाओ यहाँ से!'

रत्नाकर अपनी माँ और पत्नी के पास भी यही प्रश्न लेकर गया और उसे वही उत्तर मिला। व्याकुल होकर वह बोलने लगा, 'आप मेरे लाए हुए धन का उपभोग करते हैं, तो क्या आप मेरे पाप के सहभागी नहीं हैं?' उसके ऊपर मानो भूचाल आ गया हो। रत्नाकर पीछे मुड़ा और भागा वहाँ से।

इसके बाद जो हुआ, उसका सुन्दर वर्णन स्वामी विवेकानन्द ने किया है, ''उस डकैत की आँखें खुल गईं। 'यही संसार की रीत है, मेरे अपने स्वजन, जिनके लिए मैं लूट-पाट कर रहा था, वे मेरे पाप-कर्मों में सहभागी नहीं होंगे।' वह उस स्थान पर आया जहाँ उसने देवर्षि नारदजी को बाँध रखा था। देवर्षि के बन्धन खोलकर वह उनके चरणों पर गिरा और जो कुछ हुआ, सब बता दिया। वह कहने लगा, 'मैं क्या करूँ? मेरी रक्षा कीजिए।' नारदजी बोले, 'तुम अपना यह कुत्सित जीवन छोड़ दो। तुम समझ गए कि तुम्हारा कोई भी परिवारजन तुमसे वास्तविक प्रेम नहीं करता, इन मिथ्या भ्रान्तियों को त्याग दो... अब उन ईश्वर की पूजा करो, जो हमारे अच्छे अथवा बुरे कार्य करते हुए भी हमारे साथ रहते हैं।''

रत्नाकर ने कहा कि वह इतना पापी है कि भगवान के पवित्र नाम तक का उच्चारण नहीं कर सकता। नारदजी ने उसे आध्यात्मिक उपदेश दिए और राम मन्त्र के उलटे नाम अर्थात् 'म-रा' की दीक्षा दी। इस प्रकार निरन्तर जप करने के बाद वह 'रा-म' में परिवर्तित हो गया।

रत्नाकर तमसा नदी के निकट अरण्य में प्रवेश कर जप-ध्यान, पूजा में लीन हो गया। दिन, महीनें, वर्ष-पर-वर्ष बीतते गए। घोर तपस्या की अग्नि से उसकी विशाल पाप-राशि धीरे-धीरे नष्ट होने लगी।

एक दिन कुछ सुनकर उसका ध्यान भंग हुआ। उसने अपने गुरु की वाणी पहचान ली और नेत्र खोलकर नारदजी को देखा। जैसे ही उसने उठने का प्रयास किया, उसे लगा कि वह उठ नहीं पा रहा है। आँखें छोड़कर उसके पूरे शरीर पर दीमक का घर – वल्मीक जम गया था।

वल्मीक को तोड़कर रत्नाकर एक नवीन, पवित्र व्यक्ति के रूप में बाहर आए। नारदजी प्रसन्न होकर बोले, 'अब से तुम वाल्मीकि के नाम से जाने जाओगे।' वाल्मीकिजी ने अनुभव किया कि उनके अन्दर आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा है। उन्होंने नारदजी के चरणों में प्रणाम निवेदित किया।

एकदिन जब वाल्मीकिजी तमसा नदी से स्नान करके आ रहे थे, तो क्रौंच पक्षी के जोड़े को विचरते देख मुग्ध हो गए। उस समय अचानक व्याध के छोड़े एक बाण से नर पक्षी की मृत्यु हो गई। इससे मादा पक्षी अत्यन्त शोकग्रस्त हो गई और अपने मृत संगी के शरीर के आसपास उड़ने लगी। वाल्मीकि जी यह देखकर व्यथित हो गए और उनके मुख से ये उद्गार निकले :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, २.१४)

निषाद! तुझे नित्य-निरन्तर कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही वध कर डाला।

वाल्मीकिजी तब कवि नहीं थे, वे भी अपने इन उद्गार से आश्चर्यचकित हो गए। ब्रह्माजी उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें जगत के कल्याण के लिए श्लोकबद्ध रामायण की रचना करने को कहा। ब्रह्माजी ने उन्हें भूत और भविष्य जानने की शक्ति दी। वाल्मीकिजी पहले से ही कथा के वर्तमान समय से परिचित थे, क्योंकि उनके आश्रम में श्रीराम द्वारा निर्वासित माता सीता अपने पुत्रों लव-कुश के साथ निवास कर रही थीं। उन्हें जो रामायण-कथा लिखने के लिए कहा गया, वह वर्तमान में प्रत्यक्ष उनके सामने घट रही थी।

वाल्मीकिजी ने रामायण की रचना की और लव-कुश को संगीत वाद्यों के द्वारा इसका गायन सिखाया। अनेक वर्षों के बाद वे उन्हें और माता सीता को अयोध्या के समीप ले गए। यहाँ श्रीराम एक यज्ञ कर रहे थे। अपने आगमन की सूचना देने के बाद उन्होंने लव-कुश को मुख्य मंच पर रामायण गाने के लिए कहा। यह रामायण की प्रथम सार्वजनिक प्रस्तुति थी। श्रोतागण यह अनुपम काव्य सुनकर इतने मुग्ध हो गए कि उन्हें यह कथा जीवन्त लगने लगी। आज भी ऐसा कदाचित ही कोई व्यक्ति होगा, जो इस कथा को पढ़कर अथवा सुनकर मुग्ध न हो।

लव-कुश के रामायण गान समाप्त होने पर श्रीराम की आँखों में आँसू आ गए। उसी समय वाल्मीकिजी ने उनसे कहा, 'शोक मत कीजिए। मैं सीता को लेकर आता हूँ।' वाल्मीकिजी भरी

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

आशा भगवान की करनी चाहिए

स्वामी सत्यरूपानन्द

व्यक्ति अभिव्यक्ति के लिये है और उस दैवी अभिव्यक्ति के लिए गुरु की आवश्यकता होती है । गुरु शक्ति प्रदान करते हैं। गुरु भगवान के स्वरूप हैं। आध्यात्मिक जीवन में सबसे बड़ी आवश्यकता है गुरु के बताये हुए मार्ग पर विश्वास करना। गुरुदेव मंत्र और इष्ट दोनों प्रदान करते हैं। ईश्वर का नाम देते हैं। ईश्वर की कल्पना नाम और रूप को छोड़कर नहीं हो सकती। अपने इष्ट में मन एकाग्र हो, यही साधना का प्रयोजन है। ईश्वर का साक्षात्कार हो, यह आध्यात्मिकता का लक्ष्य है।

ईश्वर सभी रूपों में विद्यमान हैं। उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि ठाकुर हमारा मन चंचल है, उसे एकाग्र कर दो कि हम अपने इष्ट का मन्त्र-जप और ध्यान कर सकें। खाली मन को भगवान में लगाना चाहिये। भगवान के मन्त्र-जप से उसका सदुपयोग होगा। मन न लगे, तो भी बार-बार मन्त्र-जप करने की आदत डालनी चाहिये। मन्त्र-जप नहीं करने से पाप लगता है।

अपने आप पर विश्वास रखो। जिनका अपने आप पर विश्वास नहीं उनकी कोई नहीं सुनता, भगवान भी नहीं सुनते। मन से कभी अपने को दुर्बल नहीं समझना। साधना में दृढ़ता रखनी चाहिए। २४ घंटे ऐसे बिताने चाहिए कि भगवान हर क्षण याद रहें। हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही बनते हैं। अत: अपने विचार ठीक रखें और हमेशा भगवान का स्मरण करते रहें।

मन से शत्रुता नहीं करनी चाहिए। मन को समझाना चाहिए कि क्या अच्छा और क्या बुरा है। उसे अच्छा सुझाव देकर वश में लाने का प्रयास करना चाहिये। मन के वशीभूत होने से तुम विश्व विजयी हो जाओगे। यदि हम आध्यात्मिक बनना चाहते हैं, तो हमारा व्यवहार भी वैसा ही होना चाहिए। हम साधना करें, मन को शुद्ध रखें। सभी समस्यायें मन की ही हैं। इसलिये मन के सामने ईश्वर का आदर्श रखकर, पूरे मन से प्रभु को पुकारें।

भगवान ही सार वस्तु हैं, यह संसार असार है, इसे दृढ़तापूर्वक मन में बैठा लेने से मन भगवान की ओर जाने लगेगा। इस संसार की अनित्यता और असारता को हमेशा याद रखना चाहिये। सच तो यह है कि सब कुछ भगवान का है। भगवान का ही दिया हुआ तन, मन, धन है। हमें उनकी वस्तु उनको ही अपर्ण करने का प्रयत्न करना है। इसलिये जब जैसी मानसिक अवस्था हो, वैसा करना चाहिये। कभी जप करना, कभी ध्यान करना, कभी भजन गाना, कभी भगवान की पूजा-अर्चना करना, कभी भगवान की सन्तानों की सेवा करना। सब प्रकार से मन में यह निश्चित कर लेना कि मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं।

हमारे मन में आशा है। आशा ही जीवन है, तो हमें भगवान की आशा करनी चाहिये। आशा अच्छी वस्तु की, आध्यात्मिकता की करनी चाहिए। हम सांसारिक वस्तुओं की जितनी आशा रखते हैं, उससे अधिक तीव्र आशा भगवान के लिये रखनी चाहिये। भले ही हम पाँच मिनट भगवान को पुकारें, किन्तु पूरे मन से निष्ठापूर्वक पुकारें। भगवान ने संसार की जो वस्तुएँ हमें प्रदान की हैं, उसका हमें भगवान की प्राप्ति में सदुपयोग करना चाहिए। 'जब तक साँस तब तक आस'। यह संसार परिवर्तनशील है, इसको देखने वाला कभी परिवर्तनशील नहीं होता। अत: संसार का सदुपयोग करें, इससे चिपकें नहीं। संसार की रचना करनेवाले अपरिवर्तनशील भगवान से जुड़ें। वे अन्तिम समय में हमें अवश्य दर्शन देंगे, ऐसा विश्वास रखें।

ज्ञान, भक्ति के लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। 'जैसी साधना वैसी सिद्धि' होती है। अविराम निरन्तर साधना करनी चाहिए, प्रार्थना करनी चाहिए, अविराम संघर्ष करना चाहिए। अपने मन की हीन भावनाओं से वीरतापूर्वक लड़कर विजयी होना चाहिये। अपनी शक्ति के अनुसार साधना करनी चाहिए और सब कुछ भगवान को अर्पण कर देना चाहिये। ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

सभा में श्रीराम के सामने सीताजी को सम्मानपूर्वक ले आए। बाकी की कथा प्रसिद्ध ही है।

२४००० श्लोकों से पूर्ण यह अद्भुत रामायण नामक महाकाव्य आज भी उतना ही सजीव है, जितना कि हजारों वर्ष पहले था । इसके पठन करने वालों के मन में इसका स्थायी प्रभाव पड़ता है। रामायण की रचना ने वाल्मीकिजी को अमर कर दिया है।

वाल्मीकिजी का उल्लेख महाभारत में भी प्राप्त होता है। वहाँ उनकी भेंट श्रीकृष्ण और युधिष्ठर के साथ होती है। ऐसा वर्णन आता है कि सात्यकि ने युद्ध के उपरान्त रामायण का पाठ किया था । वाल्मीकिजी के देह-त्याग के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। किन्तु हम मान सकते हैं कि योग से स्वेच्छापूर्वक अपना शरीर त्याग कर वे ईश्वर में लीन हो गए होंगे। ○○○

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

नानोपाधिवशादेव जातिवर्णाश्रमादयः ।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ।।११।।

पदच्छेद – *नाना उपाधिवशात् एव जाति-वर्ण-आश्रम-आदय: आत्मनि आरोपिता: तोये रस-वर्ण-आदि-भेदवत् ।*

अन्वयार्थ – **तोये** जल में **रस-वर्ण-आदि-भेदवत्** स्वाद, रंग आदि (आरोपित उपाधियों के) भेद की भाँति ही **आत्मनि** आत्मा में **आरोपिताः** आरोपित **नाना** विभिन्न **उपाधिवशात्** उपाधियों के कारण **एव** ही **जाति-वर्ण-आश्रम-आदयः** जाति, वर्ण, आश्रम आदि दीख पड़ते हैं ।

श्लोकार्थ – जल में स्वाद, रंग आदि (आरोपित उपाधियों के) भेद की भाँति ही आत्मा में आरोपित विभिन्न उपाधियों के कारण ही जाति, वर्ण, आश्रम आदि दीख पड़ते हैं ।

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसञ्चितम् ।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ।।१२।।

पदच्छेद – *पञ्चीकृत-महाभूत-सम्भवम् कर्म-सञ्चितम् शरीरम् सुख-दु:खानाम् भोगायतनम् उच्यते ।*

अन्वयार्थ – **शरीरम्** शरीर को **सुख-दुःखानाम्** सुख-दु:खों के **भोगायतनम्** भोग का साधन **उच्यते** कहते हैं । (यह) **कर्म-सञ्चितम्** पूर्वकर्मों के अनुसार **पञ्चीकृत-महाभूत-सम्भवम्** पंच महाभूतों के मिश्रण से बना है ।

श्लोकार्थ – पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार पंचीकृत महाभूतों से बना हुआ स्थूल शरीर सुख-दु:खों के भोग का साधन कहा जाता है ।

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ।।१३।।

पदच्छेद – *पञ्च-प्राण-मन:-बुद्धि-दश-इन्द्रिय-समन्वितम् अपञ्चीकृत-भूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोग-साधनम् ।*

अन्वयार्थ – **अपञ्चीकृत-भूतोत्थं** अपंचीकृत भूतों से उत्पन्न (तथा) **दश-इन्द्रिय-** दस इन्द्रियों, **पञ्च-प्राण-** पाँच प्राणों **मनः-** मन तथा **बुद्धि-** बुद्धि **समन्वितम्** के सहित **सूक्ष्माङ्गं** सूक्ष्म शरीर **भोग-साधनम्** भोग का साधन है ।

श्लोकार्थ – अपंचीकृत (अमिश्रित) पंच महाभूतों से निर्मित; और पाँच प्राणों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, मन तथा बुद्धि (यह सत्रह वस्तुओं का समूह) सूक्ष्म शरीर कहलाता है और भोगों (सुख-दु:ख के अनुभवों) का साधन है ।

अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ।।१४।।

पदच्छेद – *अनादि अनिर्वाच्या अविद्या कारण उपाधि: उच्यते उपाधि-त्रितयात् अन्यम् आत्मानम् अवधारयेत् ।*

अन्वयार्थ – **अनादि** अनादि **अनिर्वाच्या** अवर्णनीय **अविद्या** अविद्या (को) **कारण** कारण **उपाधिः** उपाधि (शरीर) **उच्यते** कहते हैं । **आत्मानम्** आत्मा को **उपाधि-त्रितयात्** इन तीनों उपाधियों (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) से **अन्यम्** भिन्न **अवधारयेत्** निश्चित रूप से जानना चाहिये ।

श्लोकार्थ – अवर्णनीय तथा अनादि अविद्या ही 'कारण शरीर' है । आत्मा इन तीनों शरीरों अर्थात् उपाधियों से पृथक् है – यह निश्चित रूप से जानना चाहिये ।

पञ्चकोशादि-योगेन तत्तन्मय इव स्थितः ।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादि-योगेन स्फटिको यथा ।।१५।।

पदच्छेद – *पञ्च-कोशादि-योगेन तत्-तत्-मय इव स्थित: शुद्ध-आत्मा नील-वस्त्रादि-योगेन स्फटिक: यथा ।*

अन्वयार्थ – **यथा** जैसे **स्फटिकः** स्फटिक **नील-वस्त्र-आदि-योगेन** नीले वस्त्र आदि के सान्निध्य से (उन्हीं के रंग का दिखता है), वैसे ही **शुद्ध-आत्मा** विशुद्ध आत्मा **पञ्चकोश-आदि-** (अन्नमय आदि) पाँच कोशों आदि के **योगेन** सान्निध्य से **इव** मानो **तत्-तत्-मय** उन-उन से युक्त **स्थितः** प्रतीत होती है ।

श्लोकार्थ – जैसे स्फटिक अपने पास स्थित नीले वस्त्र आदि के कारण उस-उस वस्तु के रंग का प्रतीत होता है, वैसे ही शुद्ध आत्मा (अन्नमय आदि) पाँच कोशों के सान्निध्य से उन-उन के गुणों से युक्त प्रतीत होती है ।

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

८४. मुक्ति के लिये व्याकुलता

जब हमारे मन में एक शान्तिपूर्ण, कोलाहलहीन जीवन बिताने की इच्छा उठेगी, तो हमें ऐसा एक स्थान मिलेगा जहाँ का सब कुछ मन के विकास के लिए अनुकूल होगा – मेरा तो ऐसा ही अनुभव है। भले ही वह हजारों जन्मों के बाद मिले, परन्तु मिलेगा अवश्य। उस इच्छा को बनाये रखो। यदि तुम्हारी इच्छित वस्तु का तुम्हारे बाहर अस्तित्व न हो, तो तुम्हारे मन में उसके लिये प्रबल इच्छा ही नहीं होगी। वैसे तुम्हें यह बात समझ लेनी होगी कि हर इच्छा एक जैसी प्रबल नहीं होती।

गुरु ने कहा, "बेटा, यदि तुम भगवान को पाना चाहते हो, वे अवश्य तुम्हारे लिये प्रकट होंगे।"

शिष्य ने गुरु की बात का सही तात्पर्य नहीं समझा। एक दिन दोनों एक नदी में स्नान करने गये। गुरु ने शिष्य से कहा, "पानी में डुबकी लगाओ।" शिष्य ने वैसा ही किया। गुरु ने तत्काल शिष्य को पकड़ा और उसे पानी में डुबाये रखा। वे शिष्य को ऊपर नहीं आने दे रहे थे।

जब शिष्य ऊपर आने के लिये संघर्ष करता हुआ थक गया, तब गुरु ने उसे छोड़ दिया और पूछा, "बेटा, उस समय पानी के भीतर तुम्हें कैसा लग रहा था?"

"अहा! बस, एक बार साँस लेने की इच्छा हो रही थी।"

"क्या ईश्वर के लिए भी तुम्हारे मन में इसी प्रकार की प्रबल इच्छा है?"

"नहीं, महाराज।"

"तो फिर ईश्वर-प्राप्ति के लिए भी उसी तरह की तीव्र इच्छा पैदा करो, तो तुम्हें ईश्वर अवश्य मिलेंगे।" (३/९४-९५)

८५. परन्तु यह गिरेगी कहाँ?

किसी स्कूल में बहुत-से छोटे बच्चों की परीक्षा हो रही थी। परीक्षक ने उन छोटे-छोटे बच्चों के सामने बड़े कठिन प्रश्न रख दिये थे। उन प्रश्नों में एक यह भी था, "यह पृथ्वी गिरती क्यों नहीं?" उन्हें आशा थी कि उसके उत्तर में बच्चे गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त या दूसरा कोई जटिल वैज्ञानिक सत्य बताने की चेष्टा करेंगे।

अधिकांश बच्चे इस प्रश्न को समझ ही नहीं सके, अत: वे हर तरह के उल्टे-सीधे उत्तर देने लगे। परन्तु एक मेधावी बालिका ने एक दूसरा प्रश्न उठाकर इसका उत्तर दे दिया, "यह गिरेगी कहाँ?" इससे परीक्षक का प्रश्न ही बेतुका सिद्ध हो गया। ब्रह्माण्ड में ऊपर और नीचे जैसा कुछ भी नहीं है, क्योंकि ऊँच-नीच का विचार तो तुलनात्मक दृष्टि से ही होता है। आत्मा के विषय में भी यही सत्य है। इसके जन्म तथा मृत्यु का प्रश्न उठाना ही निरर्थक है। कौन जाता है और कौन आता है? तुम कहाँ नहीं हो? वह स्वर्ग कहाँ है, जहाँ तुम पहले से ही विद्यमान नहीं हो? मनुष्य की आत्मा सर्वव्यापी है। इसे कहाँ जाना है? इसे कहाँ नहीं जाना है? आत्मा सर्वत्र विद्यमान है।

अत: जन्म-मृत्यु या स्वर्ग, उच्चतर स्वर्ग और निम्नतर लोकों की धारणा बच्चों के स्वप्न या बचकानी भ्रान्ति मात्र है और एक पूर्णताप्राप्त व्यक्ति के लिये यह सब तत्काल लुप्त हो जाता है। जो लोग पूर्णता के निकट पहुँच रहे हैं, उनके लिये ये सब ब्रह्मलोक तक के विभिन्न दृश्य दिखाने के बाद लुप्त हो जाते हैं। परन्तु अज्ञानी व्यक्ति के लिये इनका अस्तित्व बना रहता है। (२/३२)

आवश्यक सूचना

२० दिसम्बर को श्रीमाँ सारदा और १९ जनवरी को स्वामी विवेकानन्द जयन्ती के अवसर पर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम-मन्दिर में पूजा, होम और व्याख्यान होंगे।

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष जनवरी, २०१७ में भी विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में २२ से ३० जनवरी तक विभिन्न प्रतियोगिताएँ होंगी और पं. रविशंकर विश्वविद्यालय में आश्रम और विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में १२ जनवरी को विभिन्न कॉलेजों के छात्र-छात्राओं द्वारा स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि दी जायेगी। ३ फरवरी से ११ फरवरी २०१७ तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती (राजेश रामायणीजी) के रामचरितमानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे।

श्रीसीता देवी से श्रीमाँ सारदा देवी

स्वामी निखिलात्मानन्द
रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

भगवती सीता त्रेतायुग में आई थीं और माँ सारदा इस कलियुग में आती हैं, किन्तु इन हजारों वर्षों के अन्तराल में भी हम इन अवतारी महनीया नारियों के जीवन में कुछ समानता के सूत्र देखते हैं कि किस तरह भगवती सीता और भगवती सारदा अवतारों के कार्य में अपना सहयोग प्रदान करती हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे कि जो ब्रह्म है, वही शक्ति है, ब्रह्म और शक्ति में कोई भेद नहीं है। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति में कोई अन्तर नहीं है। अग्नि कहने से ही उसकी जलाने की शक्ति का हमें परिचय मिलता है, दूध कहने से उसकी धवलता का बोध होता है। उसी प्रकार ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं, जब ब्रह्म नर रूप धारण करके आते हैं, तो जैसे श्रीराम के साथ सीता जी का अवतरण हुआ था, उसी प्रकार इस युग में श्रीरामकृष्ण देव के साथ श्रीमाँ सारदा का अवतरण हुआ था। श्रीरामकृष्ण कहते थे – जो राम थे, जो कृष्ण थे, वे ही इस देह में रामकृष्ण के रूप में आये हैं। इस दृष्टि से यह परिलक्षित हो जाता है कि इस युग में उनकी दृष्टि में श्रीसीताजी ही सारदा देवी का रूप धारण करके आती हैं।

श्रीरामकृष्ण ने व्याकुलता के बल पर जगन्माता काली का दर्शन प्राप्त किया था, पर इसके बाद इनकी साधना समाप्त नहीं होती है। एक दिन उनके मन में आया कि जिस तरह श्रीराम के अनन्य भक्त हनुमानजी ने राममंत्र का जप करके भगवान राम की कृपा पाई थी, उसी प्रकार अगर मैं राम की आराधना करूँ, तो क्या मुझे उनके दर्शन होंगे? यह सोचकर वे अपने को हनुमान समझकर राममंत्र का जप करना प्रारम्भ करते हैं। श्रीरामकृष्ण देव की यह विशेषता थी, वे जब जिस साधना में डूबते, उस साधना के अनुरूप अपने आपको ढाल लेते थे। वहाँ उन्होंने अपने आपको हनुमान समझा, तो बिल्कुल वानर के समान चलते, वानर की पूँछ के समान उन्होंने अपनी कमर में कपड़ा लटका लिया था और पेड़ पर बैठकर अपने को हनुमान समझकर राममंत्र का जप करते रहते। तीन दिनों के बाद वे पंचवटी में, जहाँ उनकी साधना चल रही थी, बैठे हुए थे। उस समय पंचवटी में घना जंगल था। दिन के समय भी लोग जाने से घबराते थे, डरते थे। ऐसे समय में दोपहर में श्रीरामकृष्ण देखते हैं कि उस जंगल में एक नारी चली आ रही हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे जंगल में ये अकेली नारी कहाँ से चली आ रही हैं? कौन हैं ये? जैसे वे पास आती हैं, तो देखते हैं अपूर्व सौन्दर्य है उनका। उनके मन में आता है कि क्या ये कोई देवी हैं? पर देवी नहीं, ये तो मानवी हैं। कौन हो सकती हैं ये? श्रीरामकृष्ण खड़े होकर विचार कर रहे हैं, तभी धीरे-धीरे वह नारी मूर्ति समीप आती है और जैसे ही उनके पास पहुँचती है, श्रीरामकृष्ण देखते हैं, पता नहीं कहाँ से एक विशाल वानर आकर उस नारी के चरणों में लोट-पोट करने लगता है। श्रीरामकृष्ण को लगा – अरे ये तो जनकनन्दिनी सीता हैं। ये तो श्रीरामवल्लभा सीता हैं। माँ, माँ करके जैसे ही श्रीरामकृष्ण प्रणाम करने के लिये झुकते हैं, माँ सीता आकर उनके अन्दर समाहित हो जाती हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे कि अपने चर्म चक्षुओं से मैंने पहली बार इस तरह सीताजी का दर्शन किया। अभी तक जितने दर्शन हुए थे, वे सब भाव नेत्रों से हुए थे, पर खुली आँखों से यह पहला दर्शन था। वे कहते थे कि माँ सीता मेरे अंदर समाहित हो गईं और अपनी अधरों की अद्भुत मुस्कान मुझे दे गईं। श्रीरामकृष्ण देव के अधरों में हम एक अद्भुत मुस्कान देखते हैं। वह माँ सीता द्वारा प्रदत्त है। इस तरह श्रीरामकृष्ण देव सीताजी का दर्शन प्राप्त करते हैं। उन्होंने

सीताजी के हाथों में जो स्वर्ण के कंगन देखे थे, माँ सारदा के लिए उन्होंने वैसे ही स्वर्ण-कंगन बनवा दिये थे। इस तरह जब वे अपने आप को राम के रूप में अनुभव करते, तो सारदा उनके लिए साक्षात् सीता थीं।

इसी तरह माँ सारदा भी जानती थीं कि पूर्व जन्म में वे ही सीता थीं। उसकी भी एक अद्भुत घटना है। श्रीरामकृष्ण देव के तिरोधान के पश्चात् सारदा देवी अनेक वर्षों के बाद दक्षिण भारत की यात्रा में गयीं। उस समय स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, मद्रास के अध्यक्ष थे। उन्होंने माँ के रामेश्वर धाम जाने की यात्रा की व्यवस्था की। उस समय रामेश्वर धाम रामनाद के राजा के अंतर्गत आता था। रामनाद के राजा स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे। जब उन्होंने सुना कि स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु की पत्नी यहाँ पधार रही हैं, तो उन्होंने रामेश्वर धाम में उनके दर्शन की बड़ी अच्छी व्यवस्था की थी। स्वामी रामकृष्णानन्द जी ने शिवलिंग की पूजा के लिये १०८ स्वर्ण के बिल्व पत्र बना दिये थे। माँ सारदा जब रामेश्वर धाम पहुँचती हैं, तब रामेश्वर शिवलिंग को देखकर आश्चर्य से कह उठती हैं – बाबा! जैसे मैं रख गई थी, आप ठीक वैसे ही हैं। यह सुनकर उनकी सेविका गोलाप माँ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाहर आकर माँ सारदा से पूछा – माँ! तुम तो यहाँ पहली बार आई हो ना? माँ ने कहा – हाँ। फिर तुमने कैसे कहा कि जैसा मैं रख गई थी, वैसे ही हो? माँ ने उस बात को टालते हुए कहा – अरे नहीं, जैसा तुमलोगों ने शिवजी को बताया था, ठीक वैसा ही देखा।

जब लौटकर के माँ जयरामबाटी जाने के लिए कोयालपाड़ा आश्रम मे रुकीं, तो वहाँ के स्वामी केशवानन्द जी ने पूछा – माँ रामेश्वर धाम का कैसा दर्शन हुआ? माँ सारदा तुरन्त कह उठती हैं, बेटा जैसा मैंने रखा था, मैंने देखा कि शिवजी ठीक वैसे ही हैं। यह सुनते ही गोलाप माँ ने कहा – माँ अब तो आप पकड़ी गईं। आपने शिवजी को कब रखा था? तब माँ ने जो बताया उसका तात्पर्य यह था कि वे जब सीता के रूप में अवतरित हुई थीं, तब उन्होंने ही बालू से रामेश्वर शिवलिंग की स्थापना की थीं। इस तरह सारदा देवी को सीता के रूप में शिवलिंग की स्थापना की अनुभूति होती थी।

श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – जो राम थे, कृष्ण थे, वे ही इस शरीर में रामकृष्ण के रूप में आये हैं, वैसे ही माँ सारदा दर्शाती हैं कि वे सीता और राधा के रूप में अवतरित हुई थीं। श्रीरामकृष्ण देव ने माँ सारदा के बारे में परिचय देते हुये कहा था – वह सारदा है, सरस्वती है, संसार को ज्ञान देने के लिए आई है। वह ऐसी वैसी नहीं, वह मेरी शक्ति है। सचमुच में माँ सारदा के जीवन को समझना बड़ा ही कठिन कार्य है। वे सामान्य गृहस्थ महिला की भाँति अपना जीवन बिताती हैं, ऐसा लगता है, मानों संसार के मायाजाल में फंसी हुई हैं। श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य ने स्वामी सारदानन्द जी से पूछा – महाराज मैं श्रीरामकृष्ण देव को तो साक्षात् अवतार मानता हूँ, पर ये सारदा देवी तो सामान्य महिला हैं, घर-गृहस्थी के कार्यों में डूबी हुई हैं, इनमें तो मैं महानता नहीं देख पाता। तब स्वामी सारदानन्द जी ने किंचित् व्यंग्य के भाव से कहा था – तो क्या तुम यह समझते हो कि जो अवतार आयेंगे, वे एक गोबर उठानेवाली और कंडे बीननेवाली से विवाह करने आयेंगे? तुम माँ सारदा देवी को समझ नहीं पा रहे हो, यह तुम्हारी निर्बुद्धिता है और मैं क्या कहूँ। माँ सारदा अपने आप को इस तरह घूँघट में रखती थीं कि उन्हें समझ पाना बड़ा कठिन था। श्रीरामकृष्ण देव कभी विनोद में कहते – वह मानों राख में लिपटी हुई बिल्ली के समान है। बिल्ली जब अपने चारों ओर राख लपेट लेती है, तो यह जान पाना कठिन होता है कि उसका रंग क्या है? वह सफेद है, या काली है, या चितकबरी है। फिर वे कहते हैं – इस बार वह अपने रूप को ढँककर आई है, ताकि कलिकाल में लोग कलुषित दृष्टि से देखकर पाप के भागी न बनें। इस तरह श्रीरामकृष्ण ही माँ सारदा के दिव्यत्व का उद्घाटन करते हैं।

उसी प्रकार माँ सारदा भी श्रीरामकृष्ण से अपने सम्बन्ध के बारे में सुनती हैं। एक महिला ने माँ सारदा से पूछा – माँ! श्रीरामकृष्ण देव तो साक्षात् भगवान थे और तुम क्या हो? माँ ने कहा – वे भगवान थे तो मैं और क्या हो सकती हूँ? मैं भी भगवती हूँ, भगवती छोड़कर और मैं क्या हो सकती हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि माँ सारदा को भी अपने दिव्यत्व के बारे में पूरी जानकारी थी –

भगवान श्रीराम सीताजी के बारे में कहते हैं –

आदि शक्ति जेहि जग उपजाया।

सो अवतरेहु मोर यह माया।।

आदि शक्ति, जिसने सारे संसार की सृष्टि की है, वही मेरी माया के रूप में, मेरी शक्ति के रूप में उत्पन्न हुई। यह श्रीराम का सीताजी के बारे में दृष्टिकोण है। सीताजी श्रीराम

को किस प्रकार देखती हैं? वह एक घटना के माध्यम से प्रकट होता है। यह प्रसंग तब का है, जब भगवान राम, जानकीजी और लक्ष्मणजी के साथ वन प्रान्तर से चले जा रहे हैं। आगे श्रीराम हैं, बीच में सीताजी हैं, पीछे लक्ष्मणजी हैं। ये तीनों कौन हैं? गोस्वामीजी कहते हैं मानों श्रीराम साक्षात् ज्ञान हैं, सीताजी हैं भक्ति और लक्ष्मण जी हैं वैराग्य। गोस्वामी जी लिखते हैं –

सानुज सीय समेत प्रभु राजत पर्ण कुटीर।
भक्ति ज्ञान वैराग्य जनु, सोहत धरे शरीर।।

तीनों चलते-चलते एक गाँव के पास से गुजरे। थोड़ी दूर जाकर श्रीराम एक शिला पर जाकर बैठ गये। जानकीजी और लक्ष्मणजी भी पास जाकर बैठ गये। गाँव के लोग उनके स्वरूप से आकर्षित होकर चले आये। पुरुष-वर्ग श्रीराम के तेजस्वी व्यक्तित्व को देखकर पास आने का साहस नहीं कर सके। गाँव की महिलाएँ देखती हैं कि इनके साथ एक नारी भी है और साथ-ही-साथ यह भी देखती हैं कि इनमें से एक व्यक्ति सीताजी के चरणों की ओर देख रहा है और दूसरा उनके मुख की ओर देख रहा है। गाँव की इन नारियों को लगता है कि ये दोनों ही इनके प्रति अनुरक्त हैं और इसलिए इनके पास जाने से इन दोनों का परिचय मिल सकता है। इसलिये गाँव की ललनाएँ सीताजी के पास पहुँच जाती हैं और बड़े अद्भुत ढंग से उनसे पूछती हैं, बताओ तो सखी ये दोनों तुम्हारे कौन हैं? गोस्वामीजी कवितावली में लिखते हैं –

सीस जटा उर बाहू बिसाल, बिलोचन लाल तिरछी भौहें!
तून सरासन बान धरें, तुलसी बन मारग में सुठि सोहें।।
सादर बारहिं बार सुभाय, चितै तुम्ह त्यों हमरों मन मौहें।
पूछति ग्राम बधू सियसों, यह साँवरों सो सखि रावरो को है।।

गाँव की वधुएँ सीताजी से पूछती हैं, सखि जिनके सिर में जटा-जूट हैं, जिनके तरकस में बाण भरे हुए हैं, जो लम्बी भुजावाले हैं, जो श्याम वर्ण के हैं, ये तुम्हारे कौन हैं? ये देख तो तुम्हारी ओर रहे हैं पर हमारे चित्त को मोह ले रहे हैं। लक्ष्मणजी का परिचय सीताजी सहज शब्दों में देती हैं, कहती हैं –

सहज सुभाय सुभग तनु गोरे –
नाम लखन लघु देवर मोरे।

जो सहज स्वभाव और गौर वर्ण के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है। वे मेरे छोटे देवर हैं। किन्तु भगवान राम का परिचय देते समय सीताजी एक अद्भुत कार्य करती हैं –

बहुरि बदन बिधु अंचल ढांकी।
पिय तनु चितइ भौंहकर बाकी,
खंजन मंजु तिरेछे नैननि निज
पति तिन्हहि कहेउ सिय सैननि।।

अभी तक सीताजी का घूँघट खुला हुआ था, किन्तु जब श्रीराम का परिचय देने की बारी आती है, तब वे तुरन्त अपने मुख मंडल को घूँघट से छिपा लेती हैं। जब हम किसी वस्तु का परिचय देते हैं, तब यदि उस पर आवरण रहे, तो उसको दूर करते हैं। यहाँ सीताजी उलटा ही कार्य कर रहीं है। परिचय श्रीराम का देना है और अपने ऊपर घूँघट ओढ़ ले रही हैं। क्या कारण है? सीताजी का तात्पर्य था कि मेरे और उनके बीच में तो कोई भेद है नहीं और जब उनका परिचय पूछ रही हो, तो अपने और उनके बीच भेद की सृष्टि करनी होगी, यह घूँघट ही हम दोनों के बीच भेद की सृष्टि करेगा। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि ब्रह्म और शक्ति में कोई भेद नहीं है। यहाँ श्रीराम भी कहते हैं उनमें और हममें कोई भेद नहीं है? श्रीराम और सीता क्या हैं? गोस्वामीजी कहते हैं –

गिरा अरथ जल बीच सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौ सीताराम पद तिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।

जैसे वाणी और उसके अर्थ में कोई अन्तर नहीं है, जैसे जल और उसके तरंग में कोई भेद नहीं है, वैसे ही सीता और राम, इनमें कोई भेद नहीं है। जल की तरंग होती है और तरंग अठखेलियाँ करती हैं, तब क्या कह सकते हैं – जल है माता और तरंग उसकी संतान है, अथवा जल है पुरुष, तरंग है प्रकृति। चाहे जल और तरंग को माता और संतान मानें अथवा पुरुष और प्रकृति, उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। उसी प्रकार सीताजी कहती हैं कि मेरे और उनके बीच में तो कोई अन्तर ही नहीं है, यदि अन्तर करना है, यदि अद्वैत में द्वैत लाना है, तब तो आवरण लाना पड़ेगा। इसलिए अपने ही शरीर को मानों कपड़े से ढँक कर वे भेद की सृष्टि करती हैं और अपने बंकिम नेत्रों से सीताजी श्रीराम को देखकर नेत्रों के इशारे से ही गाँव की ललनाओं को बता देती हैं कि वे उनके कौन हैं? इस तरह सीताजी भी श्रीराम का परिचय देती हैं कि श्रीराम ब्रह्म हैं, तो वे भी आद्या शक्ति हैं। इनका मिलन भी अदभुत ढंग से होता है। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (१२)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज एक कुशल प्रशासक थे। हममें से जो लोग उनके साथ कार्य करते थे, उन सबकी उनके प्रति अनवरत श्रद्धा बढ़ती गयी । यद्यपि हम उनसे बहुत कनिष्ठ थे, तो भी महाराज हम लोंगो को अपना सहकर्मी मानते थे। कार्य का दायित्व देने के पहले वे हमलोगों की जाँच कर लिया करते थे और सन्तुष्ट होने पर पूर्ण निर्भर हो जाते थे। इस प्रकार उनका पूर्ण विश्वास ही हमें संघ की श्रेष्ठतम सेवा करने के लिये प्रेरित करता था।

स्वामी गम्भीरानन्द

जैसा कि पहले कहा गया है, स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज बहुत स्पष्टवादी थे। निम्नलिखित घटना इसका उदाहरण है।

किसी आश्रम को अपनी नयी योजना का अनुमोदन मुख्य कार्यालय से कराना पड़ता है। प्रस्तावित योजना की स्वीकृति हेतु मुख्य कार्यालय में न्यासी परिषद् के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रकार सर्वसम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत किया जाता है।

श्री अविनाशीलिंगम् रामकृष्ण संघ के एक बृहत् शैक्षिक संस्थान के प्रमुख थे। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज एवं अविनाशीलिंगम्जी दोनों ही स्वामी शिवानन्द जी महाराज के शिष्य थे। अविनाशीलिंगम् अपने केन्द्र में एक कृषि विश्वविद्यालय शुरू करने का प्रस्ताव लेकर बेलूड़ मठ आये। न्यासी समिति की बैठक शुरू होने के कुछ मिनट पहले मैंने सुना कि अविनाशीलिंम् स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज से कह रहे हैं, ''महाराज, विश्वविद्यालय की बहुत आवश्यकता है। आप मेरे प्रस्ताव का समर्थन अवश्य कीजिएगा।''

महाराज ने उत्तर दिया, '' भाई अविनाशी, अभी हमारे पास इतने संन्यासी नहीं हैं कि हम विश्वविद्यालय चला सकें। अत: मैं प्रस्ताव का विरोध ही करूँगा, लेकिन तुम न्यासी समिति के अन्य सदस्यों से बात कर सकते हो। यदि वे अनुमोदन करते हैं, तो तुम्हारे विश्वविद्यालय का प्रस्ताव पारित हो जायेगा।''

जो भी हो, न्यासी समिति ने यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं किया। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज अविनाशीलिंगम्जी को स्पष्ट किन्तु अप्रिय उत्तर देने के बजाय टालमटोल कर कह सकते थे, लेकिन उनकी सहज स्पष्टवादिता ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। उन्होंने एक गुरुभाई होने के नाते अविनाशीलिंगम् को अपना समझा और अपने मन की बात स्पष्ट एवं बिना किसी झिझक के बता दी। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति होता, तो महाराज दूसरे ढंग से बात करते। अन्य लोगों से महाराज अतीव शिष्टतापूर्वक व्यवहार करते थे।

इस प्रकार की स्पष्टवादिता आध्यात्मिक जीवन की निधि है। श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''सरल बनो, मन और मुख एक करो।'' स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने इस उपदेश का अपने जीवन में पालन किया था।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के बारे में चर्चा करते हुए, मैंने कदाचित् ही सुना था। संघ के अन्य संन्यासियों की ही तरह वे भी इस बारे में कुछ नहीं कहते थे। किन्तु जब महाराज अमरनाथ यात्रा से वापस आये, तो उनसे पूछा गया, ''क्या आपने गुफा में शिवलिंग का दर्शन किया? '' उन्होंने उत्तर दिया, ''यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन मैंने वहाँ श्रीरामकृष्ण को देखा।''

अब मैं एक अन्य रोचक घटना सुनाता हूँ। एक दिन एक युवक विदेशी वेश-भूषा में बेलूड़ मठ आया। उस युवक का नाम जतिन था और वह रंगून से समुद्री जहाज द्वारा पहुँचा ही था। रंगून में वह बर्मा के सैन्य लेखा विभाग (Military Accounts Department of Burma) में कार्य करता था। बर्मा से इतनी दूरी तय करके वह रामकृष्ण संघ में संन्यासी बनने आया था। वह संघाध्यक्ष स्वामी शिवानन्दजी महाराज से मिलकर, उनकी आज्ञा से संघ में सम्मिलित होना चाहता था।

स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने युवक की वेश-भूषा को देखा और कहा कि वह संघ में सम्मिलित नहीं हो सकता। उन्होंने सोचा होगा कि ऐसा शौकीन युवक संन्यास जीवन के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

जतिन स्वामी शिवानन्द जी महाराज के कमरे से बाहर आकर उदास मन से नीचे बरामदे की बेंच पर बैठ गया। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वह सोचने लगा कि अब क्या किया जाए? तभी एक प्रौढ़ संन्यासी स्वामी निर्वेदानन्द वहाँ

पहुँचे। निर्वेदानन्दजी ने जब युवक को उदास बैठे देखा, तो उनके मन में जिज्ञासा हुई। उससे बात करने पर उन्हें सारी घटना ज्ञात हुई। वे स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पास गये और कहा, "महाराज, मैंने एक युवक को नीचे बैठे हुए देखा और उसके साथ बात भी की। वह एक बहुत ही अच्छा युवक लगता है।"

स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने निर्वेदानन्द से कहा, "क्या तुम्हें ऐसा लगता है? तब उसे कहो कि वह संघ में सम्मिलित हो सकता है।"

वह नवयुवक संन्यासी बना। रामकृष्ण मठ-मिशन के विभिन्न कार्यभार का निर्वहण करते हुए वे रामकृष्ण संघ के ११वें संघाध्यक्ष बने। वह नवयुवक और कोई नहीं, स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ही थे। यह घटना मैंने स्वामी बोधात्मानन्द जी महाराज से सुनी थी।

गृहस्थ जीवन में 'मैं'पन से 'हम'पन का भाव श्रेष्ठतर है

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के बारे में मैंने एक अन्य रोचक घटना सुनी थी। एक नेत्र सम्बन्धी रोग (Retinal Detachment) के कारण महाराज की देखने की क्षमता कम हो गयी थी। आँखों के ऑपरेशन के लिए उन्हें बॉस्टन (अमेरिका) जाना पड़ा, क्योंकि उस समय भारत में वैसी शल्य-क्रिया नहीं होती थी। बॉस्टन स्थित हमारे वेदान्त सोसाइटी ने महाराज की अमेरिका यात्रा और वहाँ के प्रसिद्ध नेत्रविशेषज्ञ से ऑपरेशन कराने की व्यवस्था की थी।

वेदान्त सेन्टर, बोस्टन की एक महिला-भक्त श्रीमती इलेनोर स्टार्क इस सम्बन्ध में लिखती हैं – "मैं बोस्टन सेन्टर में सेवा करती थी। अपनी कार से मैं स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को मैसाचुसेट्स जेनरल हॉस्पीटल में ले गयी। यद्यपि महाराज की नेत्रशक्ति प्राय: चली गई थी, लेकिन उन्हें किसी प्रकार मेरी कार की गति का आभास हो गया और उन्होंने मुझे धीमी गति से चलाने के लिए कहा। ... एक दिन मैंने महाराज को 'मेरे पति का बगीचा' के बारे में कहा। महाराज ने पूछा, 'क्या तुम्हारा आशय 'हमारे बगीचे' से है?' इस शिक्षा को मैं जीवनभर नहीं भूल सकी।

"कुछ वर्षो पश्चात् मैंने स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को हैदराबाद के एक महोत्सव में देखा था। उस समय वे बस से उतर रहे थे। उन्होंने हमारी आवाज सुनकर, हमारे पास आकर कहा, "कैसा है हमारा बगीचा?" **(क्रमश:)**

प्रभु दर्शन की आस

चन्द्रमोहन, टुंडला, फिरोजाबाद

बन भौंरा मैं ध्याऊँ प्रभुजी, चरण कमल तिहारे।
जी भर कर रस पीने दो अब, तुम ही एक सहारे।।
जीवन भर ना तप कर पाया, इसको व्यर्थ गँवाया।
ना परहित में, ना सुमिरन में, तन मन मैंने लगाया।।
अब तो मनवा चेतन कर दो, सेवित हो संसार।
काम, क्रोध हर लो प्रभु मेरे, सबके पालनहार।।
तन निर्मल मन दर्पण कर दो, त्रिभुवन के आधार।
सन्तों का सत्संग जुटा दो, बन तुम अति उदार।।
अन्तर में वह ज्योति जला दो, व्यर्थ लगे साकार।
त्याग जगाकर मार्ग दिखा दो, दर्शन में साकार।।
शरण तुम्हारी आया हूँ प्रभु, और न कोई द्वार।
पंक्षी उड़नेवाला अब है, अब तो हो उद्धार।।

जय माँ काली

जितेन्द्र कुमार तिवारी

जय माँ जय माँ काली, जय हो माता खप्परवाली।
रक्तबीज को तुमने मारा, वार तुम्हारा जाय न खाली।
दुष्ट देखकर तुमको काँपैं, होते हैं भयभीत कुचाली।
तुम हो सुजनों की रक्षक छवि भक्तों के लिए निराली।
माँ की शरण में जो भी आते, करती माँ उनकी रखवाली।

नश्वर तन

कमल सिंह सोलंकी 'कमल'

पाँच तत्त्व का नश्वर तन है, तत्त्वों में मिल जायेगा।
फिर माटी के नव गमले में, जीव सुमन खिल जायेगा।
आत्मा का निवास है तन में, परम पिता के अंशज हैं,
सारे जीव जगत के प्राणी, वासुदेव के वंशज हैं।
जिसने हरि का भजन किया नहिं, जीवन भर पछतायेगा।।
माया के प्रपंच में पड़कर, जीव यहाँ फँस जाते हैं,
काम कोध्र मद लोभ मोह, विषयी विषधर डस जाते हैं।
विषयों में आसक्त न हो मन, सभी यहीं रह जायेगा।।
धनदौलत का गर्व न करना। सब गोविन्द नवाजा है,
राजा यहाँ रंक हो जाते, रंक हुए कई राजा हैं।
क्या लाया था साथ रे भाई, जो तू लेकर जायेगा।।
राग द्वेष से विरत शरण, तू नारायण की आ जा,
जीवन के क्लेशों से मुक्ति, मत कर मन के राजा।
कमल लगा मन नारायण में भव सागर तर जायेगा।।
कर्मों में निष्काम-भाव हो, रामकृष्ण को अर्पित हों,
शरणागति की लिए कामना, जीवन प्रभु समर्पित हों।
अविरल हरि सुमरन हो मन में, जीवन व्यर्थ न जायेगा।।

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (४)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

२. सत्यमेव जयते

जो लोग गलत करते हैं, अनीति के मार्ग पर चलते हैं, कुटिलता, प्रपंच, हिंसा, आतंक का आचरण करते हैं, उन्हें जीवन में कभी सच्चा सुख या शान्ति नहीं मिलती है। गलत कार्य करने वालों के मन में एक भय बना रहता है। भले ही वे बाहर से स्वस्थ दिखाई देते हों, पर उनके मन में थोड़ी-सी भी स्वस्थता या शान्ति नहीं होती है। गीता में कहा गया है, **अशान्तस्य कुतः सुखम्?** – अशान्त व्यक्ति को सुख कहाँ से मिलेगा?

जिन्होंने दूसरों को ठगकर धन ले लिया हो या माल में मिलावट करके लोगों की जान को खतरे में डालकर पैसे कमाएँ हों, या जिन बिल्डरों ने कच्चे मकान बनाकर सम्पत्ति बना ली हो या जिन्होंने रिश्वत लेकर अनेक गलत कार्य कर या करवाकर बंगले, गाड़ी या फार्महाउस खरीद लिए हों, उन्हें शान्ति नहीं मिलती हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के मन में एक सूक्ष्म कम्प्यूटर रखा गया है, जो एक-एक बात को नोट करता रहता है। असत्य का आचरण करने वाले यह मानते हैं – ''मेरे कुकर्मों की किसी को खबर नहीं है।'' दूसरे जाने या न जाने, परन्तु उनके अन्त:करण में उन कुकर्मों की सूक्ष्म विडियो रिकार्ड हो जाती है और एकान्त के समय में यह अप्रकट विडियो उसके मन के पर्दे पर प्रकट हो जाती है, तब वह व्यक्ति भयभीत और बेचैन हो जाता है। यह सूक्ष्म विडियो उसके सुख-शान्ति को हर लेती है। गलत कार्य करने वाले का समग्र जीवन भय, असुरक्षा और अशान्ति में ही बीतता है।

एक बिल्डिंग कॉन्ट्रैक्टर को उसके गुरु ने एक दिन कहा,''भाई, हमेशा सच्चा काम करना। व्यवसाय में भी गलत काम मत करना।''

''पर गुरु महाराज, हमारा व्यवसाय ही ऐसा है, ईमानदारीपूर्वक करने से व्यवसाय नहीं चल सकता है।''

''कैसे नहीं चलेगा ? करके तो देखो!'' गुरु ने कहा।

''पर मेरा पार्टनर ही नहीं मानेगा और मैं अकेला पड़ जाऊँगा।''

''गलत कार्य करनेवाले पार्टनर के साथ कार्य करने के बदले, अकेले ही रहकर ईमानदारी से व्यवसाय करना अधिक अच्छा है।'' गुरु ने उसे समझाते हुए कहा। उस कॉन्ट्रैक्टर को गुरु महाराज में श्रद्धा थी। उनकी आज्ञा का पालन उसे करना था, इसलिये उसने कहा, ''ठीक है महाराज, जैसी आपकी आज्ञा। आशीर्वाद दीजिये। आपकी इच्छा और आज्ञानुसार मैं सच्चाई से व्यवसाय कर सकूँ।'' फिर उसने अपने पार्टनर से बात की ''मैं गलत कार्य नहीं करूँगा।''

''मूर्ख है तू? इतने अच्छे चल रहे व्यवसाय को नष्ट करना है? हम जैसा कहेंगे, वैसा ही करना पड़ेगा।''

''अब मैं ऐसा नहीं करूँगा।'' गुरु के प्रति श्रद्धा के कारण उसने अपने पार्टनर को बता दिया। पार्टनर ने उससे कहा, ''तो हमारे साथ तू साझेदारी नहीं कर सकता है।'' तब दोनों अलग हो गये। गुरु के वचनों में विश्वास रखकर, छोटे स्तर से उसने अपना स्वतन्त्र व्यवसाय शुरू किया। प्रारम्भ में दो-तीन वर्ष कठिनाई हुई, पर धीरे-धीरे लोगों को उसकी विश्वसनीयता का पता चल गया और उसे बिल्डिंग बनाने के अधिक ऑर्डर मिलने लगे। उसका व्यवसाय स्वतन्त्र रूप से भी जम गया। पहले पैसे तो अधिक मिलते थे, पर मन को शान्ति नहीं मिलती थी। अब पैसे भले ही कम मिलते थे, पर मन में शान्ति रहती थी। मन में आनन्द रहता था कि अब वह कोई गलत काम नहीं करता है।

जो असत्य का आचरण करते हैं, उन्हें शायद प्रारम्भ में सफलता मिलती दिखाई देती है, पर कभी-न-कभी कर्म के सिद्धान्त के अनुसार उन्हें गलत कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। जो एक बार झूठ का सहारा लेते हैं, उन्हें और अधिक झूठ का सहारा लेना पड़ता है। इसलिये उनके गलत कर्मों का परिमाण बढ़ता जाता है। इससे उनके मन में शान्ति तो रहती नहीं, पर एक प्रकार का भय और असुरक्षा का भाव उन्हें सताता रहता है। जो सत्य का आचरण करते हैं, उन्हें प्रारम्भ में बहुत सहन करना पड़ता है। परन्तु उन्हें सत्यपालन के मीठे फल अन्त में अवश्य मिलते हैं। अन्त में सत्य की ही विजय होती है। सत्यनिष्ठा का शुभ परिणाम भले लम्बे समय के बाद आए, पर वह जो शाश्वत शान्ति और परमसुख देता है, उसके आगे सत्यपालन के लिये मिले कष्टों का मूल्य बहुत कम होता है। इसलिये जिनको सच्चा सुख और शान्ति चाहिये, उन्हें हमेशा सत्य का पालन करना चाहिये। चाहे जितनी कठिनाइयाँ आए तो भी 'सत्यमेव जयते' सूत्र अपनाकर सत्य का पक्ष कभी छोड़ना नहीं चाहिये।

३. पद्मपत्रमिवांभसा

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, ''संसार में जलकमलवत् रहना चाहिये।'' कमल कीचड़ में खिलता है, पानी में रहता

है, पर कीचड़ या पानी का उसे स्पर्श भी नहीं होता है। उसका आन्तरिक सौन्दर्य कीचड़ या जल से गन्दा नहीं होता है। वह अलिप्त ही रहता है। इसी प्रकार संसार में रहते हुए भी जो अलिप्त रह सकता है, वही सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है।''

परन्तु सामान्य मनुष्य के लिये इस प्रकार रहना बहुत कठिन है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में भगवान ने आसक्ति दी है। यह आसक्ति अर्थात् किसी विचार, वस्तु या कार्य के प्रति मनुष्य का ऐसा लगाव जो उसके समग्र अस्तित्व पर अधिकार कर ले। यह लगाव मनुष्यों को कार्य में प्रेरित करने वाला और जीवन की विषम परिस्थितियों में टिकाये रखनेवाला बल है। इस विषय में महाभारत में एक सुन्दर कथा है –

एक ब्राह्मण भयानक जंगल में भटक गया। उसने देखा कि एक क्रूर स्त्री उस जंगल में जाल बिछाकर बैठी है। उससे बचकर वह भागा, तो एक अन्धे कुएँ में गिर पड़ा, गिरते-गिरते उसके हाथ में कुएँ में लटकती वृक्ष की डाल आ गई, उसे पकड़कर वह लटकता रहा। उसने नीचे देखा तो वहाँ एक साँप फूँफकार रहा था, ऊपर देखा तो जिस वृक्ष की डाल को पकड़कर लटक रहा था, उस वृक्ष को छ: मस्तक और बारह पैरवाला हाथी हिला रहा था, फिर उसने देखा कि दो काले-सफेद चूहे उस डाल को कुतर रहे थे। अब वह कभी भी नीचे गिर सकता था, यही डर था और नीचे था यमदूत जैसा साँप। ऊपर जंगली हाथी था। जंगल में जाल बिछाये बैठी थी स्त्री। इस प्रकार चारों ओर से भय-ही-भय था। इतने में उसने पेड़ पर मधुमक्खी का छत्ता देखा, जिसमें से शहद टपक रहा था, मुँह खोलकर वह शहद की बूँदें पीने लगा। यह कथा सुनकर धृतराष्ट्र विदुर को पूछते हैं, ''विदुर वह ब्राह्मण कहाँ है? क्या सचमुच ऐसा हो सकता है?'' तब विदुर कहते हैं कि हम सभी वही ब्राह्मण हैं। कुआँ अज्ञान है, कालरूपी साँप कभी भी डस सकता है। छ: ऋतुएँ और बारह महिने वाला संवत्सर रूपी हाथी आयु के वृक्ष को सतत हिला रहा है। जो डाल है, वह आशारूपी डाल है। उससे प्रत्येक मनुष्य लटक रहा है। सफेद और काले चूहे, दिन-रात हैं, जो आशा की डाल को सतत कुतरते हैं। ऊपर से टपकता हुआ शहद जीवन की आसक्ति है। इतने सारे भय के बीच भी मनुष्य उस शहद की बूँदों से चिपटा हुआ है। प्रतिक्षण प्रत्येक मनुष्य काल के मुख की ओर जा रहा है, फिर भी जीवन जीने की लालसा रूपी शहद से आसक्त होकर सब कुछ भूल जाता है, क्योंकि आसक्ति से आनन्द जुड़ा हुआ है।

परन्तु यह आनन्द स्थायी नहीं है। आसक्ति का केन्द्र जब हट जाता है, तब व्यक्ति को अत्यधिक दुख होता है, क्योंकि यह केन्द्र वस्तु हो या व्यक्ति, उसे हटते देर नहीं लगती है।

(क्रमशः)

बीती बातें बीते पल

साधु-जीवन में विनोद

स्वामी पवित्रानन्द

स्वामी पवित्रानन्दजी (भूपेन महाराज) स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज के शिष्य थे। बात मायावती आश्रम की है। वे समय के बड़े पाबन्द थे। वे अपने कार्य घड़ी के काँटे के साथ ठीक समय पर करते थे। उनके साथ ताल-मिलाकर चलना बड़ा कठिन था। भोजन की घण्टी बजते ही वे भोजनालय में पहुँच जाते। बाकी सबको थोड़ा भी विलम्ब होने पर लज्जित होना पड़ता। एक दिन स्वामी वीरेश्वरानन्दजी बोले, ''चलो, भूपेन महाराज से थोड़ा विनोद किया जाए।'' उस दिन पवित्रानन्द जी ने जब दीवार-घड़ी की ओर देखा, तो भोजन की घण्टी में अधिक समय नहीं बचा था। वे सारे काम छोड़कर जल्दी स्नान करने गए। जाकर देखा - पानी गरम नहीं है। इसी बीच भोजन की घण्टी बजी। भूपेन महाराज का स्नान होने के पहले ही बाकी लोग गरम पानी से स्नान करके चले गए थे। किसी ने भी चूल्हे पर दुबारा पानी गरम करने के लिए नहीं रखा था। घण्टी बजते ही बाकी सभी लोग भोजनालय में पहुँचे गए, मानो समय के बड़े पाबन्द हों! इधर भूपेन महाराज के पास लकड़ी जलाकर पानी गरम करने और फिर स्नान करने के लिए जरा भी समय नहीं था। मायावती की ठण्ड! किसी तरह ठण्डे जल से ही स्नान करके वे भोजनालय में पहुँचे और देखा कि सबने भोजन शुरू कर दिया है। वीरेश्वरानन्द जी ने बड़े ही सहज तथा मधुर शब्दों में पूछा, ''क्या बात है भूपेन महाराज, आज आपको देर हो गई?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''अरे काम करते-करते पता ही नहीं चला कि इतना समय हो गया है!'' वस्तुत: हुआ यह था कि आश्रम की एकमात्र दीवार-घड़ी के काँटे को उस दिन आगे कर दिया गया था। ○○○

स्वामी वीरेश्वरानन्द

श्रीमाँ सारदा चालीसा

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

जय माता श्रीसारदा भक्ति मुक्ति सुखधाम।
तेरे दोउ पद-कमल में बारम्बार प्रणाम।।
प्रेम-दया की जाह्नवी जगजननी महारानी।
तुम सीता माँ राधिका दुर्गा देवि भवानी।।

जय जय जय श्रीसारदा माता। लीला-संगिनी जगविख्याता।।
ब्रह्मा-विष्णु शम्भु त्रिदेवा। निशदिन ध्यावत सुरपुर देवा।।
श्यामासुता गृह लक्ष्मीरूपिणि। प्रगटी देवी जग-जनवन्दिनि।।
रामचन्द्र पितु गोद विनोदिनी। दुर्गा-अष्टसखी तव संगिनी।।
गंगा गीता सम पावनाई। दिव्यशक्ति धर नर तन आई।।
सारू गाँव में सबको प्यारी। जन-मन नंदिनी सबसे न्यारी।।
ठुमुक-ठुमुक करे सबकी सेवा। मात-पिता अरु गुरुजन देवा।।
रामकृष्ण संग व्याह रचाई। जस शंकर संग गौरी माई ।।
रामकृष्ण को देखन माता। गई पिता संग जब कलकत्ता।।
पथ में ज्वराक्रान्त हो आई। तब प्रगटी तहँ काली माई।।
होहि स्वस्थ सब पूरणकामा। दे आशिष गई माँ निजधामा।।
गाँवन की सखियन के संगा। चली स्नान करन को गंगा।।
पथ में डाकू दम्पति पायो। ताकै काली रूप दिखायो।।
एकनिष्ठ पति सेवा कीन्हीं। मातृ-प्रेम भक्तन कहँ दीन्हीं।।
गंगा-तट काली का अंचल। पतिसेवा औ जप-तप हर पल।।
श्यामपुकुर भयो तीर्थ महाना। नित जप लाख करैं माँ ध्याना।।
काशीपुर उद्यान भवन में। ठाकुर आये नव प्रांगण में।।
अद्भुत तहँ लीला प्रभु कीन्हा। हो चैतन्य का आशिष दीन्हा।।
तज ठाकुर निज भौतिक देहा। गये अखंड स्वधाम सुगेहा।।
तब माँ कीन्ह अपन विस्तारा। मातृप्रेम प्रगटेउ अपारा।।
सब भक्तन को धीरज दीन्हा। सबका भार स्वयं पर लीन्हा।।
हे सुत तुम मत होउ अधीरा। मैं तव माता जानहु धीरा।।
दक्षिण काशी वृन्दावन में। करि तीरथ दर्शन गिरि वन में।।
रामेश्वरम् त्रिवेणि प्रयागा। पावन करि निज पदुम परागा।।
कबहुँक कामारपुकुर में राजे। कबहुँ जयरामवाटि विराजे।।
कभी कलकता उद्बोधन में। कभी दरश देती जन-मन में।।
रामकृष्णमय जीवन तोरा। क्षण क्षण सुमिरत चित्त चकोरा।।
सीता औ काली के रूपा। दिये दरश माँ भव्य अनूपा।
शरत राखाल योगीन भाई। धन्य होत कर माँ सेवकाई।।
लाटू नरेन निरंजन काली। सेवत मातु मनहि भाग्यशाली।।
माँ को सेवत सब सुख पावै। भक्ति मुक्ति शान्ति चलि आवै।।
नीलाम्बर गृह माँ जब रहहीं। गर्मी माँहि पचतपा करहीं।।
तन-मन तप सबके हित करईं। शुद्ध मन प्रभु याचना करईं।।
यद्यपि चन्द्र में दाग है काला। ताहु न रहै मोहि दीनदयाला।।
अद्भुत शान्ति मन्त्र बतलाई। होउ निर्दोष सबहि अपनाई।।
चाहो शान्ति अगर जीवन में। पर का दोष न लाओ मन में।।
सब पुत्रों को अभय दिलायी। भक्तन से बोली करूणाई।।
मैं नहीं मात्र धर्म की माता। मैं हूँ तेरी सत्य सुमाता।।
जब कछु संकट तोपर आवै। तब सुत मोहि तुरत बोलावै।।
यह उपदेश कबहु नहि भोरै। माता एक सदा है तोरै।।
यम की भी नहिं क्षमता बावे। जो मम सुत को त्रास दिखावे।।

स्नेह सुरसरि सारदा नाशत सब संताप।
जो सुमिरै नित नित बढ़ै शक्ति भक्ति प्रताप।।
!!! जय श्रीसारदा माँ की जय!!!

हे सारदा जगदीश्वरी माँ सकल लोक विराजिनी।
हे प्रेमसरिता शान्तिरूपिणी भक्ति मुक्ति विधायिनी।
हे मात निज दीनार्त्त सुत को अब यही वर दीजियो,
दे विमल भक्ति, परम प्रीती निज शरण में लीजियो।।

पृष्ठ ५७५ का शेष भाग

वह तो बस कान्हा को बातों के बहाने देखना चाहती थी।

कान्हा अपने हाथों की छोटी अंजलि बनाकर उसमें धान ले आता है। वह धान लेकर आ रहा है और उसके हाथों की ऊँगलियों में से थोड़ा-थोड़ा धान नीचे गिर रहा है। फलवाली तक पहुँचते-पहुँचते उसके हाथों में दो-तीन दाने ही रह जाते हैं।

उतने ही दाने टोकरी में गिराकर वह फलवाली को बोला, 'अब मुझे फल दे दे!' फलवाली कहती है, 'तू एक बार मुझे 'माँ' कह दे, और जितने फल चाहिए, ले जा।'

'माँ ! अब मुझे फल दे दे!' बिचारी फलवाली के तो आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। वह कान्हा के छोटे-छोटे हाथों में फल दे रही है। कान्हा फल लेकर उत्साह में घर की ओर भागा। फलवाली भी प्रेमधन पाकर, टोकरी उठाकर अपने घर की ओर जाती है। मार्ग में उसे लगा कि उसकी टोकरी भारी हो गई है। नीचे रखकर देखती है, तो उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। उसकी टोकरी रत्नों से भर गई थी। वह समझ गई कि यह सब उसी माखन-चोर कान्हा की लीला है। किन्तु उसे अब ये रत्न-आभूषण नहीं चाहिए थे।

भागवत में इस कहानी का अति संक्षिप्त उल्लेख है, पर कन्हैया के प्रेमी-भक्तजन तो रस की सृष्टि करेंगे ही। ❍

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में विश्व भ्रातृत्व दिवस मनाया गया – विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर और राष्ट्रीय सेवा योजना, पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में ११ सितम्बर, २०१६ को अपराह्न ४ बजे 'विश्व भ्रातृत्व दिवस' मनाया गया। इसी दिन ११ सितम्बर, १८९३ को स्वामी विवेकानन्द जी ने शिकागो धर्ममहासभा में हिन्दू धर्म पर ऐतिहासिक व्याख्यान देकर विश्वबन्धुत्व के संदेश को सारे जगत में प्रसारित किया था। उसी स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिये यह दिवस 'विश्व भ्रातृत्व दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इस सभा के मुख्य अतिथि थे हरिभूमि के सम्पादक डॉ. हिमांशु द्विवेदी जी, अध्यक्ष थे छत्तीसगढ़ आयुष एवं स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय, रायपुर के पूर्व कुलपति पद्मश्री डॉ. ए. टी. दाबके जी और वक्ता थे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के विवेक ज्योति के सम्पादक स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी। प्रारम्भ में विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने शिकागो व्याख्यान के एतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला। स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने शिकागो व्याख्यान की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला, हिमांशु द्विवेदीजी ने व्याख्यान की प्रासंगिकता और दाबके जी ने शिक्षा पर प्रकाश डाला।

स्वामी आत्मानन्द स्मृति व्याख्यानमाला का आयोजन

छत्तीसगढ़-मध्यप्रदेश में रामकृष्ण भावधारा के अग्रदूत स्वामी आत्मानन्द जी की स्मृति में व्याख्यानमाला का आयोजन हुआ। ५ अक्टूबर, २०१६ को रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई में शाम ६ बजे व्याख्यान हुआ, जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी निखिलात्मानन्द जी और स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने व्याख्यान दिये। ६ अक्टूबर, २०१६ को प्रात: ९ बजे आत्मानन्दजी की समाधिस्थल पर भजन और कीर्तन हुए। शाम ६ बजे से विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा में स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी निखिलात्मानन्द और स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के प्रवचन हुए। सभा में श्री भूपेश बघेल, श्री देवजी भाई पटेल भी मंचस्थ थे। ७ अक्टूबर को अपराह्न २ बजे से स्वामी आत्मानन्द जी की जन्मभूमि बरबन्दा में विविध कार्यक्रम आयोजित हुए। जिसमें पूर्वोक्त स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी निखिलात्मानन्द जी, और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने व्याख्यान दिये।

मध्य प्रदेश-छत्तीसगढ रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की अर्धवार्षिक सभा रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में सम्पन्न हुई - २४ और २५ सितम्बर, २०१६ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की अर्धवार्षिक सभा रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में आयोजित की गई। २४ को सभा ८.३० बजे प्रारम्भ हुई। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव और मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भावधारा के अध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी ने की। सभा में मंचस्थ थे भावधारा के उपाध्यक्षद्वय स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, भावधारा के निरीक्षक स्वामी भवेशानन्द, भोपाल के स्वामी योगीश्वरानन्द और लखनऊ के स्वामी मुक्तिनाथानन्द जी महाराज। प्रथम सत्र में सभी भावधारा के प्रतिनिधियों ने अपने वार्षिक प्रतिवेदन पढ़े। होशंगाबाद आश्रम को भावधारा में अन्तर्भुक्त किया गया। अगली वार्षिक और अर्धवार्षिक भावधारा का स्थान अमरकंटक और भिलाई निश्चित हुआ। भावधारा के संयोजक श्री हिमाचल मढरिया जी ने सबको धन्यवाद ज्ञापन और आभार व्यक्त किया। अपराह्न २.३० बजे पुरस्कार वितरण हुआ। शाम ७ बजे नारायणपुर आश्रम के छात्र-छात्राओं ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। २५ सितम्बर को भक्त-सम्मेलन का आयोजन था, जिसमें लगभग ४५० भक्तों ने भाग लिया। उपरोक्त सभी संन्यासियों और स्वामी अनुभवानन्द जी तथा डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी के व्याख्यान हुए। स्वामी कृष्णामृतानन्द, ब्रह्मचारी विनयचैतन्य और मंगलचैतन्य ने ठाकुर, माँ और स्वामीजी की वाणी का पाठ किया। भक्तों के आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान स्वामी मुक्तिनाथानन्द जी महाराज ने किया। धन्यवाद ज्ञापन श्री आर. के. गौतम जी ने किया। अन्त में रामकृष्णशरणम् से सभा समाप्त हुई। ○○○

'विवेक-ज्योति' में वर्ष २०१६ ई. में प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

पृष्ठ ५७४ का शेष भाग

पहचानने में हम भूल कर देते हैं। अपनी वास्तविक इच्छा को जानने में स्वाधीन होना, यह स्वाधीनता की अनिवार्य शर्त है। किन्तु जब तक हम अपनी शरीर और मन की वासनाओं से मुक्त नहीं हो जाते और जब तक हम असंख्य मनुष्यों के बन्धन से मुक्त नहीं हो जाते, तब तक हमें यथार्थ मुक्ति का ज्ञान नहीं होता।

जिन्होंने सचमुच में यह मुक्ति प्राप्त कर ली है, वे अपने आत्मा के स्वर्गीय सुख में आनन्द और कृपा से पूर्ण, कितनी भव्य, शान्त और अम्लान विरासत का अनुभव अपने जीवन में कर सकेंगे। यह किसी भी प्रकार से, किसी भी माध्यम से प्रकट हो सकती है। मुक्त व्यक्ति ही मुक्ति को ठीक समझ सकता है। मुक्त व्यक्ति ही मुक्ति का मार्ग बता सकता है। मुक्त व्यक्ति के ही कार्य प्रभावकारी होते हैं। वे अपनी दुर्बलता एवं दूसरों के विरोध से अप्रभावित होते हैं। मुक्ति! मुक्ति! मुक्ति में ही व्यक्ति का सर्वोच्च हित है। प्रत्येक हिन्दू जानता है कि यह ऐसा पूर्ण प्रकाश है, जो अधिक मन्द भी नहीं है और तीव्र भी नहीं है, अपितु यह सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करता है। किन्तु जब भी हम मुक्ति की व्याख्या करना चाहते हैं, हमारे सम्मुख एक अनन्त असम्भाव्यता खड़ी हो जाती है। तब हम केवल 'नेति' 'नेति' ही बोल सकते हैं।

एक सैनिक के लिए आज्ञापालन ही प्रार्थना है। विश्राम के समय में जप करते रहना और कार्य के समय नींद में रहना, ऐसा करना उचित नहीं है। इससे कोई पुण्य प्राप्त नहीं होगा। इसके अलावा यदि किसी बालक की माता उसे सब काम-काज छोड़कर खेलने के लिए कहती है और वह बालक अपनी माँ को भी भूलकर खेलने में लग जाता है, तो उसकी भक्ति यथार्थ है और अनेक प्रणामों से भी श्रेष्ठ है।

वीरता में ही प्राय: धर्म का पूर्ण भाव निहित है। कुछ जातियों में यह गुण उनकी जन्मजात-प्रवृत्ति के कारण होता है। किन्तु धार्मिक सत्य को प्रमाण मानकर इसके पहले जीवन में इतना व्यापक, इतना दूरगामी सर्वेक्षण कभी नहीं किया गया। हम देखेंगे कि इस वीरता रूपी धर्म में ही मुक्ति निहित है, क्योंकि वीर पुरुष को अपनी वीरता का भान हमेशा रहता है। यदि जीवन के सामान्य क्षणों में व्यक्ति निर्भय और सुचारु है, तो विशेष अवसरों पर भी उसकी वीरता का प्रकट होना फूल खिलने के समान स्वाभाविक होगा। ○○○

अन्य संकलन

OOO

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

(रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा, पश्चिम बंगाल - ७११२०२ की एक शाखा)
स्वामी विवेकानन्द मार्ग, पो. - बेला, मुजफ्फरपुर - ८४३११६, दूरभाष - ०६२१-२२७२१२७, २२७२९६३
ई-मेल - rkm.muzaffarpur@gmail.com, Website : www.rkmmuzaffarpur.org

विवेकानन्द नेत्रालय हेतु निवेदन
(नेत्र, कान-नाक-गला, दन्त चिकित्सालय एवं निदान केन्द्र)

वर्तमान भवन में उपलब्ध सुविधायें	१९४७ में उत्तर बिहार में स्थापित आँख के पुराने मरीजों का कक्ष, सामान्य चिकित्सा , दन्त विभाग, होम्योपैथी, एक्सरे, पैथोलॉजी ।
२०१५-१६ में आश्रम द्वारा निम्नलिखित सेवाएँ दी गईं	बहिरंग विभाग (ओपीडी) में कुल ८७,६४७ रोगियों की चिकित्सा, नि:शुल्क मोतियाबिन्द आपरेशन - ३,३२५ - (ST/SC - 1089, B.C.- 1,365), आंशिक शुल्क सहित - १,७०३, पैथोलॉजी जाँच - २,७९९, दंत चिकित्सा - ३८९७, कम्पूयटर कोचींग एवं सिलाई प्रशिक्षण, आदर्श नैतिक शिक्षा प्रतियोगिता - ४००० विद्यार्थियों के लिये, राष्ट्रीय युवा दिवस समारोह मनाना, आपातकालीन राहत कार्य, बच्चों की अनौपचारिक शिक्षा एवं कोचिंग ।
हमारा लक्ष्य	**एक नये चिकित्सा केन्द्र का निर्माण करना**, जो नाक-कान-गला, दंत चिकित्सा, विभिन्न बाह्य मरीज विभाग, अच्छी तरह से सुसज्जित क्लीनिकल लेब, आर.एन्ड डी. विभाग, आधुनिक निदान एवं पैरामेडिकल प्रशिक्षण आदि आधुनिक उपकरणों से विशेष रूप से सुसज्जित हो ।
कार्य की प्रगति	निदान केन्द्र का निर्माण कार्य हो गया है और उसका उपयोग किया जा रहा है ।
आवश्यकताएँ	रु.३५ लाख - Recovery यूनिट के शेष कार्य हेतु । रु.६५ लाख - विवेकानन्द नेत्रालय के ग्राउंड फ्लोर एवं प्रथम फ्लोर के शेष कार्य हेतु । रु. ६ करोड़ - सहायक मेडिकल यूनिट, ऑफिस एवं डॉक्टर्स क्वार्टर्स हेतु रु. ३ करोड़ - चिकित्सा उपकरण हेतु । रु. १५ लाख - संरक्षण हेतु रु. १५ लाख - शैक्षिक एवं पूजोत्सव हेतु रु. १५ करोड़ - स्थायी निधि हेतु

प्रिय भक्तो एवं मित्रो,

हमारा आपसे विनम्र अनुरोध है कि आगामी विवेकानन्द नेत्रालय परियोजना (नेत्र, कान-नाक-गला, दंत चिकित्सालय एवं निदान केन्द्र) जिनका निर्माण कार्य २०११ से चल रहा है और आपकी सहायता से अब सम्पूर्णता की स्थिति में पहुँच चुका है । उत्तर बिहार में मुजफ्फरपुर नगर जैसे स्थान, जहाँ स्वास्थ्य जैसी प्रारम्भिक सुविधाएँ बहुत कम हैं, वहाँ सेवाश्रम द्वारा चिकित्सा सेवाकार्य को अच्छी स्थिति में लाने की आवश्यकता हेतु हमारा यह अनुरोध है कि इसमें आप सहयोग करें । आपके द्वारा प्रदत्त योगदान से स्वामी विवेकानन्द, माँ सारदा एवं श्रीरामकृष्ण देव की वास्तविक पूजा होगी, जिनका जीवन भक्तों एवं जिज्ञासुओं की आध्यात्मिक उन्नति के लिए समर्पित था ।

मैं आशा करता हूँ कि गरीब एवं अभावग्रस्तों की सेवा से हमारे सामूहिक प्रयास के द्वारा हम 'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च' (संसार की सेवा एवं स्वयं की मुक्ति) के आदर्श की ओर हम एक कदम आगे बढ़ेंगे । यह आपके परिजन एवं प्रिय लोगों की भावनाओं एवं स्मृतियों को बनाएं रखने में भी सहायता करेगा ।

आप एवं आपके सभी लोगों के मंगल हेतु श्रीठाकुर, माँ और स्वामीजी से प्रार्थना सहित,

आपका
स्वामी भावात्मानन्द
सचिव

आप अपना दान चेक/डी.डी अथवा NEFT/RTGS द्वारा अकाउन्ट नम्बर 10877071752, IFS Code : SBIN0006016 पर रामकृष्ण मिशन, मुजफ्फरपुर के नाम जमा करा सकते हैं। दान राशि आयकर धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

रामकृष्ण मिशन आश्रम

(रामकृष्ण मिशन बेलूड़ मठ का एक शाखा केन्द्र)

सेक्टर 15-बी मध्यमार्ग, चण्डीगढ़ - 160015

फोन : 0172-2549477

ई-मेल : rkmachandigarh@gmail.com

वेबसाइट : www.rkmachandigrh.org

प्रस्तावित सार्वजनिक ध्यान कक्ष, शैक्षणिक और सांस्कृतिक परिसर

विनम्र निवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़ में सार्वजनिक ध्यान कक्ष, शैक्षणिक और सांस्कृतिक परिसर का निर्माण कार्य प्रगति पर है

प्रिय भक्तो, शुभचिन्तको एवं मित्रो !

चण्डीगढ़ में रामकृष्ण मिशन आश्रम भारत के विभाजन के बाद १९५५ में प्रारम्भ किया गया था । तब से आश्रम द्वारा शान्ति के इच्छुक लोगों के लिये आध्यात्मिक क्रिया-कलाप, नि:शुल्क सचल चिकित्सा सेवा, कालेज के छात्रों के लिये विवेकानन्द छात्रावास, स्कूल एवं कालेजों में मूल्य शिक्षा कार्यक्रम, आम जनता के बीच प्रेरणाप्रद और उदात्त उत्तम साहित्य का वितरण आदि कार्य चल रहा है ।

पिछले कुछ दशकों के दौरान इन सेवा गतिविधियों में लगातार वृद्धि हो रही है । आश्रम के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे प्रात: एवं सायंकालीन प्रार्थना, ध्यान एवं आधात्मिक सत्संग में भाग लेने वाले भक्तों की संख्या काफी बढ़ चुकी है ।

इन सबकी सुविधा हेतु एक नये भवन के निर्माण का निर्णय लिया गया है । इस भवन में होंगे –

(अ) एक विशाल ध्यान-कक्ष एवं साधु-निवास (व्यय – लगभग *1.3* करोड़)

(ब) शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र (व्यय – लगभग २.१ करोड़)

योजना पर कुल व्यय – (लगभग ३.४ करोड़)

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के 11 वे अध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज के द्वारा 24 नवम्बर 1985 को सार्वजनिक ध्यान-कक्ष का शिलान्यास किया गया था ।

नवीन ध्यान-कक्ष एवं शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक-भवन का निर्माण कार्य प्रगति पर ।

चेक/डिमाण्ड ड्राफ्ट **'रामकृष्ण मिशन आश्रम चण्डीगढ़'** के नाम से बनवाकर ऊपर दिये गए पते पर कोरियर, स्पीड पोस्ट या रजिस्टर्ड पोस्ट से भेज सकते हैं ।

भारत में आप अपनी दानराशि निम्नलिखित बैंकों में सीधे जमा कर सकते हैं :

१. ICICI A/C No. 001301029198, ब्रांच सेक्टर 15-C, चण्डीगढ़, IFSC – ICIC000 2429

2. IDBI A/C No. 003104000083216, ब्रांच सेक्टर 8-C, चण्डीगढ़, IFSC - IBKL000000 3

जमा की गई दान-राशि का विवरण, अपना पता एवं फोन नम्बर उसी दिन हमें ई-मेल से भेज दें ।

रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान आयकर धारा 80 (G) of I.T. Act 1961 के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

भगवान श्रीरामकृष्ण की सेवा में आपका

स्वामी सत्येशानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़